ओ३म

मनुर्भव मनुष्य बनो

पं० सुरेशचन्द्र वेदालंकार

★ प्रकाशक ★

आर्य प्रकाशन, दिल्ली - 110006

॥ ओ३म् ॥

मनुर्भव—

मनुष्य बनो !

लेखक

सुरेशचन्द्र वेदालंकार, एम० ए०

प्रकाशक

आर्य प्रकाशन

८१४, कुण्डेवालान, अजमेरीगेट, दिल्ली-६

प्रकाशक :
आर्य प्रकाशन
८१४, कुण्डेवालान अजमेरीगेट,
दिल्ली-११०००६

संस्करण : प्रथम, १९८७

मूल्य : पाँच रुपये

मुद्रक :
दुर्गा मुद्रणालय,
सुभाषपार्क एक्सटेंशन,
शाहदरा, दिल्ली-११००३२

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक श्री तिलकराजजी आर्य व्यवस्थापक आर्य प्रकाशन की प्रेरणा पर लिखी गई है। श्री आर्यजी का आर्यसमाज तथा वैदिक साहित्य से सम्बन्धित पुस्तकें प्रकाशित कर महर्षि दयानन्द के लक्ष्य को पूरा करना उद्देश्य है। इस लक्ष्य की पूर्ति हेतु वे मेरी समझ में निष्कामभाव से लगे हुए हैं। उनकी प्रेरणा पर मैंने 'मनुष्य बनो—मनुष्य बनो' पुस्तक वेद के 'मनुर्भव' इस आदेश के आधार पर लिखी है।

वेद मनुष्य को 'मनुष्य' बनाता है। और वह मनुष्य की सीमा से भी आगे बढ़कर सम्पूर्ण प्राणिमात्र को अपने प्रेम का अधिकारी बनाता है। 'मनुष्य' शब्द का अर्थ है 'मत्वा कर्माणि सीव्यन्ति' (निरुक्त ३।७) जो विचार कर कर्म करे, अन्धाधुन्ध कर्म न करे। कर्म करने से पूर्व जो अच्छी प्रकार विचारे कि इस कर्म का क्या फल होगा ? किस-किस पर इसका क्या प्रभाव होगा ? यह कर्म प्राणियों की पीड़ा का कारण बनेगा, या इस कार्य से भूतों का प्राणियों का हित होगा।

यदि 'मनुष्य' सचमुच मनुष्य बन जाए तो संसार से सारा उपद्रव दूर हो जाय।

शंकराचार्यजी ने कहा है 'जन्तूनां नर जन्म दुर्लभम्' सचमुच नर तन पाना दुर्लभ है। वेद कहता है, मनुष्य जन्म तो तूने प्राप्त कर लिया, मनुष्य भी बन। केवल नर तन धारी ही न रह, नर मन धारी भी बन। नर मन धारी बनने के लिए ऋग्वेद का १०-५३-६ मंत्र 'तन्नु तन्वं रजसो भानु भन्विहि' मन्त्र पर हमें विचार करना होगा और वैसा जीवन बनाना होगा। इतना ही नहीं वेद कहता है 'जन या दैव्यं जनम्' देवहितकारी जन को पैदा कर। देवहितकारी जन को पैदा करने के लिए मनुष्य को स्वयं देव बनना पड़ेगा अर्थात् मनुष्य बनकर जब सन्तान

उत्पन्न करने लगे तब उसे अपने हृदय को पवित्र बनाना चाहिए।

इन्हीं विचारों को सामने रखकर 'मनुष्य बनो' का उपदेश दिया गया है।

इस पुस्तक को प्रकाशित करने के लिए सबसे पहले मैं श्री तिलकराजजी आर्य व्यवस्थापक 'आर्यप्रकाशन' को धन्यवाद देता हूँ। परमहंस श्री पूज्य स्वामी जगदीश्वरानन्दजी का तो मेरी पुस्तकों के प्रकाशन में सदा सहयोग एवं आधार रहता ही है अतः उनके प्रति कृतज्ञता का भाव रखना स्वाभाविक है।

श्री पूज्य स्वामी वेदानन्दजी का भी मैं कृतज्ञ हूँ कि उनके ग्रन्थ भी मेरा मार्ग प्रदर्शन करते रहते हैं। श्री पूज्य सत्यव्रतजी सिद्धान्तालंकार मेरे गुरु हैं और उनकी शिक्षायें एवं ग्रन्थ तो सदा मेरा सहयोग करते रहे हैं। उनका हृदय से कृतज्ञ हूँ।

—सुरेशचन्द्र वेदालंकार

सम्पर्क –

9029421718

मानव जीवन की महत्ता

संसार में दो तरह के जीवधारी हैं। एक हैं पशु पक्षी, जल-चर, नभचर और दूसरे हैं मनुष्य। इनमें मनुष्य को छोड़कर अन्य सभी प्राणी भोग योनि के प्राणी हैं। भोगयोनि का मतलब है कि इनके कर्त्तव्य निश्चित हैं, इनकी क्रियायें निर्धारित हैं। इनकी क्रियाओं का फल इन्हें नहीं भोगना पड़ेगा। परन्तु मनुष्य भोग योनि के साथ-साथ कर्मयोनि का भी प्राणी है। उसे भोग भी भोगने हैं और कर्म भी करना है। भोग योनि को इस प्रकार समझ लीजिए कि जिसके आंख नहीं, वह क्या करें? यह उसका भोग है। वह लंगड़ा है। वह कोढ़ी है। यह सब उसके भोग हैं। परन्तु उसकी विशेषता यह है कि वह लंगड़ा होने पर अपनी इस कमी को दूर करने के लिए उपाय खोजता है, वह अन्धा है तो अपने अन्धे पन को मिटाने के लिए आविष्कार करता है, अपना मार्ग सुलभ बनाने का प्रयत्न करता है। उसने विकास किया। वह जमीन से उड़ा और चन्द्रलोक तक पहुंच गया। शुक्र तक पहुंचने को तैयार हो रहा है। वह अपनी अनुचित वृत्तियों पर रोक लगाना चाहता है। उसने बैठकर और मनन करके सत्य की महत्ता का प्रतिपादन किया। 'अहिंसा परमोधर्मः' का सिद्धान्त अपनाया, अपरिग्रह को जीवन यापन का मार्ग बतलाया, चोरी अर्थात् दूसरे की वस्तुओं के अपहरण को अनुचित माना परन्तु दूसरी ओर रोटी बनाती हुई बुढ़िया, बालिका या किसी हृष्ट पुष्ट पहलवान में जरा भी अन्तर न कर बन्दर उसकी

रोटियां लेकर भाग जाता है, उसके लिए दया कोई वस्तु नहीं। बिल्लियों ने किसी सभा में एकत्र होकर पंचशील के मंच का आविष्कार नहीं किया। शेरों ने अहिंसा के महत्व को समझने के लिए सम्मेलन नहीं बुलाये। क्योंकि उनके लिए उनके कर्म निश्चित हैं। उन कर्मों को करते हुए सफलता या असफलता हो सकती है पर वे उन कर्मों की पद्धति में परिवर्तन नहीं कर सकते। इसीलिए रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी एक सुन्दर कविता में लिखा है "भगवान् फूल से उसे दी गई सुगंध की, रंग की मांग करता है। कोकिल से उसे दी गई कुहू कुहू की अपेक्षा रखता है। वृक्ष से वह केवल उसके फल की आशा रखता है। लेकिन मनुष्यों के सम्बन्ध में उसके नियम निराले हैं। उसने मनुष्य को दुःख दिया है, उसकी इच्छा है कि मनुष्य उसमें से सुख प्राप्त करें। उसने मनुष्य को अन्धकार दिया है, वह कहता है इस अन्धार से प्रकाश उत्पन्न करो। उसने मनुष्य को मर्त्य बनाया, वह कहता है इस मरण में से अमृतत्व (अमर मन्) प्राप्त करो। उसने आस-पास चारों ओर फैली हुई गन्दगी को, असत् को देखा तो कहा, इस असत् में सत् प्राप्त करो।' इस विषय में से सुधा का सृजन करो, इस अमंगल में से मंगल का निर्माण करो।" मनुष्य के विषय में भगवान् का यह पक्षपात क्यों? मानव के ऊपर ही यह महान् उत्तरदायित्व क्यों? मानव के लिए इतनी कठोरता क्यों है? यह असंभव अपेक्षा क्यों है? नहीं। भगवान् कठोर नहीं है, दुष्ट नहीं है। वे यह अनुभव करते हैं कि सृष्टि में मानव ही सबसे बड़ा है। यदि मानव से ऐसी अपेक्षा न करे तो किससे करे? यह मनुष्य के लिए गौरव की बात है। भगवान् को विश्वास है कि चौरासी लाख योनियों के बाद पैदा होने वाला यह बड़ा मानव प्राणी, यह सारी सृष्टि का मुकुट मणि

मेरी आशा व्यर्थ नहीं जाने देगा ?"

महाभारत कार ने कहा है "देख तुझे रहस्य की एक बात बताता हूं, मनुष्य शरीर से उत्तम और कुछ नहीं है।"

अथर्व वेद १८ वें अध्याय के दूसरे सूक्त में, ईश्वर की अमर कविता में जिसे वेद कहते हैं, जो कविता न कभी बूढ़ी होती है, न मरती है, इस शरीर का अत्यन्त सुन्दर वर्णन आया है। वहां लिखा है "वह कौन-सा महान् शिल्पी है जिसने इस शरीर का निर्माण किया है।"

तैत्तिरीयोपनिषद् में एक कहानी है कि सब पशु पक्षियों के शरीर बनने के बाद ऋषियों और योगियों के सूक्ष्म शरीर इस संसार में आए और उन्होंने सबके शरीर देखने के बाद मानव शरीर का निरीक्षण किया और उसे अपना निवास स्थान बनाया। इसमें पांच ज्ञानेन्द्रियां, मन और बुद्धि ये सात ऋषि इसमें रहने लगे। इस शरीर को देवपुरी भी कहा गया है और ऋग्वेद में इसे ब्रह्मपुरी माना गया है। क्योंकि यही शरीर है जिसमें आत्मा अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है।

शेक्सपियर अंग्रेजी साहित्य का एक बहुत बड़ा नाटककार हुआ है, उसने एक स्थान पर मानव के बड़े पन का इसी प्रकार वर्णन किया है कि मनुष्य कैसे बोलता है, कितने सुन्दर ढंग से चलता है, कितना सुन्दर दिखाई देता है, उसका हृदय कितना बड़ा है, उसकी विचार शक्ति कैसी है, कैसी विशाल दृष्टि है, मानो मनुष्य भगवान् की साक्षात् प्रतिमा ही है।

समर्थ रामदास स्वामी ने लिखा है :—

धन्य धन्य है वह नर देह,
यह है अपूर्वता का गेह।

संस्कृत के एक श्लोक में कहा गया है:—बहुना पुण्य-पण्येन क्रीतेयं काम नौ स्त्वया। अरे भाई, यह मनुष्य-देह तुझे बड़े भाग्य से मिली है।

सन्त तुकाराम ने इस नर देह को 'सोने का कलश' कहा है।

इस प्रकार मनुष्य से भगवान् ने कितनी बड़ी आशा की है। लेकिन मनुष्य इस अपेक्षा को कैसे पूरा करेगा? पशु की भांति आचरण करने वाला मनुष्य देव के समान कैसे बन सकेगा? बर्नार्ड शा ने एक स्थान पर कहा है:—

"मनुष्यों को बने हुए हजारों वर्ष व्यतीत हो गए। भगवान् आशा से प्रतीक्षा कर रहा है। वह अपना उद्देश्य पूरा करने के लिए भिन्न-भिन्न प्रयोग कर रहा था। यह सोचते-सोचते उसने हजारों प्राणियों का निर्माण कर दिया कि यह प्राणी मेरा उद्देश्य पूरा करेगा; लेकिन उसकी आशा अपूर्ण ही रही। पहले के अनुभव से लाभ उठाकर भगवान् नवीन प्राणियों का निर्माण कर रहा था। लेकिन वे नवीन प्राणी भगवान् को निराश करते थे। ऐसा करते-करते भगवान् ने मनुष्य का निर्माण किया और वह थका हुआ भगवान् सो गया। उसे लगा कि वह मानव प्राणी मेरी सारी आशायें पूरी कर देगा। मेरे सब मनोरथ पूरे कर देगा। वह निश्शंक होकर सो गया। जब मैं जागूंगा तब मनुष्य की दिव्य वृति देखने को मिलेगी और आंखों की भूख मिटेगी, इसी आशा से भगवान् सो रहा है।" यह है मानव की महत्ता जिसका विभिन्न लेखकों ने काव्यरूपी भाषा में वर्णन किया है।

इस प्रकार यह मानव शरीर बड़े सौभाग्य से हमें मिलता है। परन्तु यह श्रेष्ठ तभी होता है जब मानव शरीर का ठीक-

ठीक उपभोग हो। हमारी मानव यात्रा शुरु हो गई है। हम सब यात्री है-मांगल्य की ओर जाने वाले यात्री, सागर की ओर जाने वाली नदी एक ही वेग से नहीं जाती है, कभी टेढ़ी जाती है, कभी ऊंचाई से निश्शंक होकर छलांग मारती है। कभी उच्छृं-खल हो जाती है, कभी गांव नष्ट कर देती है, कभी गंभीर तो कभी उथली, कभी हंसती है तो कभी रोती है, कभी जंगल और कांटों में से चलती है तो कभी प्रसन्न मन से मैदान में बहती है लेकिन अन्त में सागर के चरणों पर गिर जाती है। उन हजारों नदियों की रात दिन राह देखने वाला सागर उसे अपने हजारों हाथों से गले लगा लेता है—अपने एक रूप में कर लेता है। इसी प्रकार मानव जीवन का भी यही उद्देश्य है, परमात्मा के साथ मिलन। इसी उद्देश्य से उसने इस विशाल विश्व का निर्माण किया है। आइए, जब हमें मानव जीवन मिल गया है तो हमें इसे सफल बनाने के लिए और दिव्य पुरुष बनने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। हम इसकी सफलता के लिए निर्धारित कर्त्तव्यों का पालन करें। किसी कवि ने लिखा है :—

मानव बना आज युवराज।
राज तिलक करने को तेरा।
सूर्यचन्द्र लाए है ताज।
नभ में मेघ सजल घिर आए,
वसुन्धरा पर सागर।
करने को अभिषेक तुम्हारा,
लाते अमृत घट भर-भर कर।
भयि मुक्ता से जढ़ित गगन।
तारक भय का ताज।
प्रभु का पावन स्नेह जलाशय

कर ले उसमें स्नान अबाध ।
वरद पुत्र ईश्वर का तू है,
कर ले अमित सुधा का पान ।
अमृत मय त्रैलोक्य राज्य का,
प्रभु देते हैं दान ।
अपने हाथों तिलक लगाया,
प्रभु ने तेरे आज ।
मानव बना आज युवराज ।

मनुष्य बन! मनुष्य बन!!

तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि,
ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान्।
अनुल्बणं वयत जोगुवामपो,
मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्॥

ऋ. १०।५३।६. तैत्तिरीय सं० ३-४-२-२

हे यज्ञ करने वाले अथवा कर्मशील मनुष्य (तन्तुम् तन्वन्) जीवन यात्रारूपी यज्ञ को तानते हुए तू (रजसः) आकाश के या संसार के (भानुम्) सूर्य का (अनुइहि) अनुसरण कर (धिया कृतान्) बुद्धि से बनाए हुए, परिष्कृत किए हुए (ज्योतिष्मतः पथः) प्रकाश वाले मार्गों (रक्ष) सुरक्षित रख। (जोगुवाम्) निरन्तर ज्ञान और कर्म का अनुष्ठान करने वालों के या कवियों विद्वानों अथवा सम्मान करने वाले लोगों के (मानुल्वणं) उलझन रहित (अपः) कर्मों को (वयत) बुनो या विस्तृत करो (मनुर्भव) मनुष्य बन और (जनया दैव्यं जनम्) दिव्य गुण कर्म वाली सन्तान, जनता या सोसाइटी को (जन्म) उत्पन्न कर।

जीवन को सफल बनाने के लिए मनुष्य को किस प्रकार वरतना चाहिये। संसार को सदा जिसकी आवश्यकता रही है और रहेगी और इस समय भी जिसकी अत्यन्त आवश्यकता है, उस तत्व का उपदेश इस मन्त्र में दिया गया है। जुलाहा कपड़ा बुनता है। कपड़ा बनाने से पूर्व कपास से रूई निकाली

जाती है, उसे चर्खे पर काता जाता है और फिर उस सूत से वस्त्र का निर्माण किया जाता है। इसीलिए वेद कहता है कि जीवन एक तन्तु है और मनुष्य को उसका तन्तु काम या जुलाहा कहा जाता है।

वेदों में यज्ञ भी तन्तु कहा जाता है। यजुर्वेद के ३४ वें अध्याय के चौथे मन्त्र में कहा गया है "येन यज्ञस्तायते सप्त होता" मन के द्वारा सात होताओं वाला यज्ञ ताना जाता है। जीवन भी एक यज्ञ है वह भी ताना जाता है। बड़े वैज्ञानिक इस जीवन यज्ञ को समझ सकते हैं। प्रत्येक यज्ञ किसी उद्देश्य को लेकर किया जाता है। वह कौनसा उद्देश्य है जिसके लिए मनुष्य को यज्ञ का उपदेश दिया है। तो हमें पता चलता है कि वह यज्ञ है "मनुर्भव—मनुष्य बनो।"

यह मन्त्र मनुष्य को आदेश देता है कि तू मनुष्य बनने के लिए जीवन के ताने बाने को बुनता हुआ आकाश के सूर्य का अनुसरण कर। (रजसः भानुः अनुष्इहि) आकाश के सूर्य को आदर्श मानकर उसके पीछे चल। सूर्य प्रकाश का चिन्ह है, सूर्य ज्योति का प्रतीक है। ज्ञान प्रकाश स्वरूप होता है। प्रकाश स्वरूप का मतलब है, वास्तविकता को समझ कर चलना। आकाश में सूर्य निकलता है तो शनैः-शनैः ऊपर को चढ़ता जाता है अतः प्रत्येक मनुष्य को जीवन में ऊपर उठने की चेष्टा करनी चाहिए। यह सूर्य के मार्ग के अनुभमन का भाव है। ऋग्वेद के १०।१०१।१ मन्त्र में कहा गया है—

उद्‌बुध्यध्वं समनसः सखायः,
समग्निमिन्ध्वं बहवः सनीडाः।
दधिक्रामग्निमुषसं च देवी,
मिन्द्रावतोऽवसे निह्वये वः॥

उठो, जागो, हे भाइयो ! मनोबल से अनुप्राणित हो जाओ। एक राष्ट्र के वासी तुम सब अपने अन्दर उत्साह की प्राप्ति को, कर्म बाना में आगे बढ़ने की भावना को, जीवन को ऊपर उठाते हुए सूर्य के समान प्रदीप्त करने की चेष्टा को जागृत करो। तुम्हारी रक्षार्थ मैं उस अग्नि का आम्यास करता जिसे धारण करते ही मनुष्य क्रियाशील हो उठता है, तुम्हारी रक्षार्थ मैं प्रकाश से जगमगाती हुई उस ऊषा का आह्वान करता हू जिससे जीवन ज्योतिर्मय हो उठते हैं। अपने जीवनों को 'अग्नि मय' बनाओ। अपने जीवन को सूर्य की तरह ज्योतिर्मय बनाओ। अपने जीवनों को आगे बढ़ने की प्रेरणा दो।

अश्मन्वती रीयते संरभध्वं,
वरियहवं प्रतरता सखाय: ।
अत्रा जहीम से असन् दुरेवा,
अनभीवानुत्तरे माभिवाजान् ॥ अथर्व १२-२-२६

उठो, मित्रो, देखो वह सामने अनेक विघ्न बाधाओं के पत्थरों से भरी संसार की दुस्तर नदी वेग से बहती चली जा रही है। उठो, तैयार हो जाओ, एक दूसरे का हाथ पकड़ लो, मिलकर उद्यम करो और उसे पार कर जाओ। जो खोटी चालें हैं, उन्हें यहीं छोड़ दो। आओ, विघ्न बाधाओं की इस भयकर नदी के पार उतर कर जीवन में आगे बढ़ते हुए रोग रहित सुख-ऐश्वर्य का उपभोग करें।

मनुष्य को जीवन में सदा आगे की ओर बढ़ने का प्रयत्न करना चाहिए।

उत्क्रामात: पुरुष मावपत्था, मृत्यो:
पड्वीशमवमुञ्चमान: । अथर्व ८-१-४

हे नर ! उन्नति कर, आगे बढ़, अवनत मत हो, मौत की बेड़ी काट डाल।

उद्यानं ते पुरुष नावयानं,
जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि। अथर्व ८-१-६

हे नर ! देख, जीवन में तेरी उन्नति होनी चाहिए, अधोगति नहीं। तेरे अन्दर मैं जीवन और बल फूंकता हूं। पुराने समय में बालक जब गुरुकुल में शिक्षा के लिए जाता था तो उसे गुरु कहता था—

सूर्यस्याकृतम् अनुव्रजस्व

सूर्य के पीछे चलो मेरे बच्चे ! तेरी शिक्षा और तेरे जीवन का आदर्श सूर्य हो।' शिष्य उत्तर देता है :—

सूर्यस्यावृतम् अन्तावर्तें।

मैं सूर्य के पीछे चलूंगा। और फिर वह कहता था :—

अहं भूयासं चारूदेव,
चारुदेवाहं भूयासम्,
भूयासं सवितेव चारू।

मैं सूर्य की तरह सुन्दर, चमकने वाला और आकर्षण वाला बनूंगा, हां बनूंगा अवश्य, इस सुन्दर सूर्य की तरह ही। वेद ने सूर्य के विषय में बहुत सी बातें बताई हैं। वह कहता है सूर्य आत्मा जगतस्युषश्च' यह सूर्य इस जगत् में सांस लेने वाले और सांस न लेने वाले—सबकी आत्मा है। यजुर्वेद के ४०वें अध्याय के अन्तिम मन्त्र में कहा गया है :—

योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्।
ओ३म् खं ब्रह्म॥

यह जो सूर्य में चमकने वाला, दिखाई देने वाला जगमगाता हुआ पुरुष है, वह मैं ही हूं। मेरी और उसकी आत्मा एक है। यह आत्मा ही सारे संसार की रक्षा करने वाला, अनन्त आकाश में फैला हुआ ब्रह्म यही है। यज्ञ-हवन के मन्त्रों में आहुति देते हुए कहा है :—

ओं सूर्यो ज्योति ज्योति सूर्य:
ओं सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्च:
ओं ज्योति सूर्य सूर्यो ज्योति
ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या जुषाण: सूर्यो वेतु

इस प्रकार सूर्य के अनुगमन की बात मनुष्य बनने के लिए कही गई है। जरा सूर्य बनने का भाव और बता दूं। सूर्य के अनेक अन्य भी गुण हैं।

पहला गुण है चमक, विद्या की, ज्ञान की, शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बल की, योग और भक्ति की चमक अपने अन्दर पैदा कीजिए और इस चमक और प्रकाश को केवल अपने पास मत रख, इसे वितरित कर—वितरित कर।—

महर्षि दयानन्द को एक बार कुछ लोगों ने कहा 'प्रभुवर ! आपको सिद्धि प्राप्त हो चुकी है। आपको तो मुक्ति मिल ही जाएगी। फिर क्यों आप विश्व के सुधार के पचड़े में पड़े हैं ?'

स्वामी दयानन्द ने कहा 'मुझे अपने लिए ही केवल मुक्ति नहीं चाहिए। मैं संसार में यदि एक भी आदमी दुःखी है तो उसको मुक्त करवाए बिना नहीं बैठूंगा।' जीवन भर उन्होंने वैसा ही किया भी।

स्वामी श्रद्धानन्द ने भी मृत्यु समय दुःखी भारतीयों की सेवा की कामना की।

सूर्य का एक गुण स्थिरता है। वह अपने केन्द्र और मार्ग से कभी विचलित नहीं होता अरे मनुष्य ! तू भी अपनी मर्यादाओं और मानवता के केन्द्र पर टिका हुआ आगे ही आगे बढ़ता जा।

सूर्य का एक गुण यह भी है कि वह सागर, नदियों, झीलों, तालाबों, कूओं, सब जगह से पानी लेकर उसे बादल बनाता है और वर्षा के रूप में उसे वापस कर देता है। "शतहस्त समाहर, सहस्त्र हस्त विकिर" सौ हाथ से कमाओ और हजारों हाथ से आवश्यकता वाले परोपकार के कार्यों में लुटा दो। भामाशाह का उदाहरण सूर्य का है। दानी हरिश्चन्द्र और कर्ण सभी सूर्ययुक्त हैं। सूर्य के इस सर्वस्वदान से पहाड़ों की चोटियों पर बर्फ चमक उठती है, झरने अपना काम प्रारम्भ कर देते हैं, नदियों का खिलखिलाते हुए भागना प्रारम्भ हो जाता है, वनों में हरियाली छा जाती है, मैदानों में शस्यश्यामला छवि छा जाती है, बागों में फूल के वृक्ष झूमने लगते हैं, खेतों में खड़े अनाज के दाने मोतियों से जगमगाने लगते हैं। यह सच्चे दान का प्रतिफल जो दिखाई देता है। सर्वत्र प्रसन्नता का राज हो जाता है।

सूर्य का एक गुण समय पालकता का तथा कर्त्तव्य पालने का भी है। लगभग दो अरब वर्ष हो गए यह सूर्य कर्त्तव्य पर डटा चला जा रहा है। कभी एक दिन भी उसने छुट्टी नहीं ली। वह दो दिन, दो सप्ताह की छुट्टी ले ले या समय का ध्यान न रखे तो पूरे सूर्य मण्डल का 'राम नाम सत्य' हो जाएगा। हर जगह हर प्रकार के जीवन का अन्त हो जाता। क्योंकि यह जीवन सूर्य से ही तो आता है। यह सूर्य नियमबद्धता का परि-चायक है।

सूर्य का एक गुण आकर्षण है। मनुष्य बनने के लिए ऐसा स्वभाव बनाओ कि लोग तुम्हारे पास आएं, तुम्हारे पास रहना चाहें। अपने व्यक्तित्व को मधुर और आकर्षक बनाओ। किसी को अछूत मत समझो, जातिवाद को दूर करो। हमारे हिन्दू समाज को सूर्य से शिक्षा लेनी चाहिये कि जैसे वह सबको समान समझता है, हम भी सबको समान समझें। सूर्य के पीछे चलना है तो मानवता को केन्द्र बनाकर सम्पूर्ण जगत, सम्पूर्ण प्राणियों को अपनी उस धुरी के पास लाओ। हमने तो जाती में जातियां पैदा कर दीं। मैं पूज्य आनन्द स्वामी जी महाराज की सुनाई हुई एक घटना आपको बताता हूं।

एक पठान था। सीमा प्रान्त में रहता था। वहाँ के रहने वाले एक सेठ जी ने बड़ा भारी ब्रह्म भोज किया। बहुत से ब्राह्मणों को उन्होंने न्ययोता दिया था। भोजन भी अत्यन्त स्वादिष्ट और अनेक प्रकार के तैयार करवाये थे। उनकी सुगन्धित ही लोगों के मुख से लार चुआ देती थी। उसकी सुगन्ध से प्रभावित होकर उस पठान ने अपने साथी से कहा, "मैं भी इस दावत में शामिल होकर खाना खाने जाता हूं।"

साथी ने उसे बताया कि यदि वहाँ खाने के लिए जाना चाहते हो तो ये कपड़े उतार कर कुर्त्ता और धोती पहनो। यज्ञोपवीत् भी पहनो, माथे पर तिलक भी लगा लो, फिर वहाँ जाओ।

पठान ने वैसा ही किया। साथी ने उसे इसके सिवाय यह भी समझा दिया कि वहां यदि कोई पूछे कि तुम कौन हो? तो कहना कि ब्राह्मण हूं। और पूछे कि कौन ब्राह्मण हो? तो कहना गौड़ ब्राह्मण हूं। यह सीख कर वह भोजन करने चला गया। एक पंक्ति में बैठ गया। उसके पास बैठे व्यक्ति को

कुछ सन्देह हुआ। उसने पूछा तुम कौन हो ? पठान ने कहा—"ब्राह्मण हूं।" पूछने वाला बोला—"कौन ब्राह्मण ?" पठान ने कहा—"गौड़।" "कौन गौड़ ?" पठान ने घबरा कर कहा—"या अल्लाह ! गौड़ में भी और होते हैं।" पूज्य आनंद स्वामी जी महाराज की सुनाई गई एक और घटना सुनिए।

वे बताते थे कि एक बार मैं रात-दिन यात्रा करने के बाद रतलाम पहुंचा। भूख से व्याकुल था अपने एक मित्र के यहां जाकर ठहरा, नहाया धोया, कपड़े बदले। प्रतीक्षा करने लगा कि मित्र अभी कुछ खाने को कहेंगे परन्तु वे अपने कमरे में बैठे पूजा करते रहे। दस बजे, ग्यारह बजे, मेरे पेट में चूहे दौड़ते हुए मालूम होने लगे। मन में आया कि बाजार जाकर खा आऊं परन्तु मित्र के बुरा मानने के डर से नहीं गया। अन्त में १२ बजे मित्र आये और कहा कपड़े उतारो और चलो खाना खाने मैंने कहा कपड़े उतारने की क्या आवश्यकता है ? स्वामी जी महाराज ने बताया उनके कहने पर कोट उतारा, कमीज उतारी एक खद्दर की बनियान पहने रखी। उन्होंने कहा यह भी उतारो। मैंने कहा सर्दी का मौसम है। यह तो रहने दो अन्यथा बीमार हो जाऊंगा। वे मित्र बोले होने दो, खाना खाना है कि नहीं ? मैंने बनियान भी उतार दी तो वे बोले धोती भी उतार दो। स्वामीजी ने बताया कि मैं जरा हिचका तो उन्होंने सामने खूंटी पर रखी मलमल की धोती दिखाई और कहा इसे पहन लो मैंने यह भी किया।

वह बोले, 'इस चौके में बैठो !'

मैं आगे बढ़ा, चौके में पांव रखा ही था कि वह चिल्ला उठे 'बेड़ा गरक हो गया।'

स्वामी जी बोले—'क्या हो गया ? यह खुशी में बेड़ा कैसे गरक हुआ ?'

उन्होंने कहा सुबह से मेहनत करके नौकर ने खाना बनाया और तुमने एक पांव चौके से बाहर रखा और एक अन्दर। सब सत्यानाश हो गया है।"

स्वामी जी ने कहा—'मित्र ! यदि चौके में इस तरह नहीं जाता तो और कैसे जाता ?'

वह बोले—"एक दम दोनों पांव उठाकर कूद जाना था।?

स्वामी जी महाराज ने कहा कि इस देश का बेड़ागर्क ऐसे मानव को मानव न समझने वालों ने किया। भारतवर्ष का बेड़ा तो निश्चित रूप से इन लोगों ने गर्क किया।

भारतीय इतिहास की एक घटना सुनिए। अहमदशाह अब्दाली और मराठों में भयंकर युद्ध हो रहा था। अहमदशाह अब्दाली हार रहा था। एक समय वह अपनी सेना का निरीक्षण कर रहा था उसने एक ऊंचे स्थान पर खड़े होकर मराठों की सेना की ओर देखा। उसने देखा कि मराठों के शिवर में विभिन्न स्थानों पर आग जल रही थी। उसने गुप्तचरों को भेजा कि इसका पता करें। गुप्तचरों ने अब्दाली को बताया कि मराठों में विभिन्न लोग हैं और वे एक दूसरे का खाना नहीं खाते। यह सुनकर अब्दाली को अपनी विजय का विश्वास हो गया और उसने कहा जिन देशों और जातियों का खान पान एक नहीं उनकी विजय नहीं हो सकती। मराठों की पराजय इतिहास का एक पृष्ठ है।

इसलिए यह मन्त्र कहता है कि मानवता के केन्द्र को मत छोड़ो। सूर्य के पीछे चलने का यही भाव है।

सूर्य का एक गुण यह भी याद रखिए कि वह कभी घबराता नहीं, बादल आ जाय, घन घोर घटायें छा जायें वह निराश नहीं होता, रुकता नहीं। आगे-२ बढ़ता चला जाता है।

सूर्य का मानव बनने के लिए एक गुण यह भी है कि वह गन्दगी हो, कीचड़ हो, खारी समुद्र हो सबसे अमृत रूप जल ले लेता है और गन्दगी को छोड़ देता है। वह गन्दगी को दूर कर देता है वैसे ही हमें भी करना चाहिए।

सूर्य का एक गुण यह भी है कि जहां भी जिस जगह भी बुरे कीटाणु हैं उन्हें नष्ट कर देता है। हमें असत्य से हटकर सत्य को फैलाना चाहिए, मृत्यु को हटाकर अमरत्व को लाना चाहिए। अन्धकार को मिटाकर प्रकाश को लाना चाहिए। यह है सूर्य के मार्ग का अनुसरण।

मनुष्य बनने के लिये अगली बात वेद बताता है 'ज्योतिषमतः पथो रक्ष धिया कृतान्' प्रकाश के मार्गों की रक्षा, उनमें अपनी बुद्धि से परिष्कार कर।' संसार के सभी देशों में प्रकाश बुझाने वालों के लिए दण्ड का विधान है। किन्तु संसार की गति अत्यंत विचित्र है। संसार में ऐसे भी हुए हैं, और आज भी ऐसे मनुष्याकार धारी प्राणी हैं जो प्रकाश का नाश करते रहे हैं और कर रहे हैं। उन्हें क्या कहा जाएगा जिसने सिकन्दरिया का विशाल पुस्तकालय जला दिया। उन्हें क्या कहा जाएगा जो वर्षों भारत के ज्ञान भण्डार से हमाम-स्नानघर गर्म करते रहे? उनका क्या नाम रखा जाएगा, जिन्होंने चित्रकूट का करोड़ों रुपयों का पुस्तकालय अग्निदेव की भेंट कर डाला? ये सभी नर तन धारी थे, किन्तु क्या इन्हें मनुष्य नाम देना उचित होगा?'

वह मनुष्य जो प्राप्त ज्ञान को अपने तक ही बांधकर रखता

है क्या मनुष्य कहलाने का अधिकारी है ? जो प्रकाश को दूसरों तक नहीं जाने देता। अपने तक रोककर रखता है, क्या मनुष्य कहलाने का अधिकारी है ? वेद कहता है "ज्योतिष मता: यथो रक्ष" पूर्वजों से प्राप्त ज्ञान की रक्षा कर।

ज्ञान की रक्षा का क्या भाव है ? किसी मनुष्य के मन में पक्षी को उड़ता देख उड़ने की इच्छा हुई। बेचारा गिर पड़ा, अग भंग हो गए। अगलों ने उसकी चेष्टा को स्मरण रखा, उसके यंत्र को मूलाधार बनाया साथ में अपनी बुद्धि का प्रयोग किया और बाद में जहाज बन गया। रेडियो, टेलीवीजन आदि का आविष्कार भी एक के ज्ञान को बढ़ाते हुए दूसरे ने अपनी बुद्धि लगाकर मनुष्य को आज चन्द्रलोक में भेज दिया। यह सब ज्योतिष पथ की रक्षा के द्वारा हुआ। वेद ने एक बात और जोड़ दी 'धिया कृतान्' प्रकाश की रक्षा अवश्य कर परन्तु अपनी बुद्धि लगाकर उसमें अपना भी भाग डाल दे।

इस विषय में एक बात और ध्यान में रखने की है कि बड़ा मार्ग, प्रकाश का मार्ग बड़े आदमियों या प्रकाश देने वालों से भी अधिक बड़ा है।

आप दान देते हैं। दान जिसको दिया उसका लाभ हुआ इसलिए दान अच्छी चीज है। दान देने के बाद दान की क्रिया समाप्त हो गई परन्तु आपके दान-कर्म से दान की जो प्रथा पड़ गई वह तो आपसे भी अधिक महत्व की है। वह प्रथा अनेक दानियों और भविष्य में दान लेने वालों को लाभान्वित करती रहेगी। वह प्रथा ज्योति स्तंभ (Light house) का काम करती है। यह सब बुद्धि के बल से बनाये गए मार्ग हैं। जिन्होंने 'धिय: कृतान्' बुद्धि के बल से इन मार्गों का आविष्कार किया वे कितने पुण्यशील हैं। इतिहास के रेत पर राम के पद

चिन्हों को देखो, कृष्ण के पद चिन्हों को देखो, स्वामी दयानन्द और श्रद्धानन्द के पद चिन्हों को और धिया कृतान् बुद्धि के द्वारा निर्मित उनके प्रकाशशील मार्गों की रक्षा करो। वह मार्ग ही मानव का निर्माण करेगा। वेद कहता है।

नमः पूर्वजे भवः पूर्व ऋषिस्य :।

ज्ञान का पर्यवसान कर्म में होता है। ज्ञान का अनुसरण करने के लिए ज्ञान के रक्षक और परिवर्धन की नितान्त आवश्यकता है। किन्तु ज्ञान का प्रयोजन ? ज्ञान केवल ज्ञान के लिए नहीं होता। ज्ञान का प्रयोजन या उद्देश्य उसे कर्म में लाना होता है। मुझे याद आता है, नेहरू जी का भाषण वह किसी विश्वविद्यालय में गए। कार्याधिक्य से देर से पहुँचे और उनका जहाज छूटने वाला था। उन्होंने उपस्थित अपार भीड़ से क्षमायाचना की और अपने भाषण में कहा। उपस्थित श्रोताओ ! मैं रूस के मास्को विश्वविद्यालय में गया था। वहां विश्वविद्यालय के दरवाजे पर लिखा था 'स्टडी' 'स्टडी' और 'स्टडी' (स्टडी, अध्ययन या स्वाध्याय करना)। वे कहते हैं कि मैं सोचने लगा कि यह तीन बार क्यों ? एक बार 'स्टडी' लिखने से काम चल सकता था। उस समय तो मुझे समझ में नहीं आया पर बाद में जब मैं एक बार भारतीय उपनिषदों को पढ़ रहा था मुझे संभवतः छान्दोग्योपनिषद् में मिला 'अध्येतकः'—पढ़ना चाहिए। मन्तव्यः—मनन करना चाहिए और 'निदिध्यासितकः'—जीवन में उभरना चाहिए तब मुझे मालूम पड़ा स्टडी, स्टडी. स्टडी का यही भाव है कि स्वाध्याय करो—मनन करो और जीवन में उतारो। शब्द दारिद्रय के कारण, शब्दों की कमी के कारण उन्होंने केवल 'स्टडी' शब्द तीन बार लिखकर काम चलाया। संस्कृत शब्दों की दृष्टि से

धर्नो भाषा है।

ज्ञान की सफलता कर्म में है अतः वेद कहता है :—

'अनुल्वणं वयत जोभुवामयः'

ज्ञानानुसार कर्म करने वालों के उलझन रहित कर्मों को करो। क्या मतलब ? सुनिए :—

उल्वण कहते हैं सूतों को तानते समय जो धागा टूट जाता है और उसको जोड़ने के लिए जो गाँठ लगाई जाती है। इससे वस्त्र की सुन्दरता नष्ट हो जाती है। 'जोभु' का अर्थ है। ईश्वर के गुणगान करने वाला। 'अयः' का अर्थ है कर्म। तात्पर्य यह है कि ईश्वर के भक्त महात्मा लोग जो कर्मों की प्रथा रच गए उसको विना बीच में विच्छेद किए जारी रखो जिससे धर्म का तन्तु विच्छेद न हो। 'अनुल्वण' और 'उल्वण' कर्मों की क्या पहचान हे ? तैत्तिरियोपनिषद् १—११ (३-४) में बतलाया गया है :—

यदि ते कर्म विचिकित्सा वा वृत्त,
विचिकित्सा वा स्यात्।

ये तत्रब्राह्मणा सम्मर्विनिः युक्ता
अयुक्ताः अलूक्षा धर्मकामाः स्युः।
यथा ते तत्र वर्त्तेरन्, तथा तत्र वर्त्तेथाः ।।

अर्थात् उपनिषद् मनुष्य को बतलाती है कि अच्छा, जहां तू रहता है, वहाँ कोई ब्रह्मनिष्ठ भी है या नहीं ? उन ब्रह्मनिष्ठों का व्यवहार देखना, जो सत्यप्रिय, मधुर भाषी, निष्काम, सर्वहितकारी हों, वे कैसे करते हैं ? उनका अनुसरण कर। किन्तु ज्ञान को हाथ से न जाने देना।

इनका अनुष्ठान करके मनुष्य, मनुष्य बन जाता है। आज

का संसार ईसाई बनने पर बल देता है। बुद्ध बौद्ध बनाने लगे हैं। 'बुद्धं शरणं गच्छामि' का नारा लगा रहे हैं। मुसलमान मुहम्मद का अनुगमन करने का उपदेश दे रहे हैं। परन्तु ईसाई ने ईसा के नाम पर जो रक्त बहाया उसे देखकर कंपकपी हो जाती है। बिल्ली की रक्षा करने वाले मुहम्मद की उमात का इतिहास भी भाइयों के रक्त से रंजित है, महात्मा बुद्ध के अनुयायियों ने विहारों में जो भोगवाद का प्रचार किया वह घृणा उत्पन्न करने वाला है। अतः वेद कहता है मनुष्य बनो—मनुष्य—बनो। मनुष्य शब्द का अर्थ है। मत्वा कर्माणि 'सी व्यन्ति' (निरुक्त ३.७) जो विचारकर कर्म करे, अन्धाधुन्ध कर्म न करे। मनुष्य यदि सचमुच मनुष्य बन जाए तो संसार का सारा उपद्रव दूर हो जाय।

आदमी आदमी जो बन जाए।
कष्ट सारे जहां का मिट जाए॥

इसीलिए महर्षि व्यास ने महाभारत में कहा है :—

"गुह्यं ब्रह्म तदिदं वो ब्रवीभि
नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्।"

'मैं तुझे यह परम रहस्य की बात बताता हूं कि संसार में मनुष्य से बढ़कर कुछ नहीं है।'

तुलसीदास कहते हैं—

बड़ भाग मानुष तन पावा।
सुर-दुर्लभ सब ग्रंथ हि गावा।

शतपथ ब्राह्मनकार बतलाता है—

'पुरुषो वै प्रजापतेर्नेदिष्ठम्'

अर्थात् प्राणियों में से मनुष्य परमेश्वर के निकटतम है।

एक उर्दू का कवि कहता है—

आदमिय्यत और शै है, इल्म है कुछ और चीज।
कितना तोते को पढ़ाया, पर वो हैवाँ ही रहा॥

दूसरा कहता है :—

खुदा तो मिलता है, इन्सान ही नहीं मिलता।
ये चीज वह है कि देखी कहीं-कहीं मैंने॥

मनुष्य बनने के लिए निम्न लिखित गुणों को धारण कीजिए :—

(क) ब्रह्मचर्य के नियमों के अनुसार जीवन व्यतीत करना।
(ख) क्रोध पर विजय प्राप्त करना।
(ग) मधुर बोलना तथा प्रेम पूर्वक व्यवहार करना।
(घ) "मा गृधः कस्यस्विद्धमम्" लालच मत करो धन सदा रहने वाला नहीं इस नियम के अनुसार चलना।
(ङ) मोह का त्याग करना।
(च) जीवन में नम्रता को धारण करना और अहंकार का त्याग करना।
(छ) कृतघ्नता से बचना और कृतज्ञता करे ध्यान रखना।
(ज) श्रद्धा।
(झ) प्रेम या अहिंसा
(ञ) ईश्वर भक्ति
(ट) सत्य व्यवहार
(ठ) परोपकार एवं सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझना।
(ड) स्वावलम्बन।
(ण) तपस्यामय जीवन बनाना।

मनुष्यता क्या है ?

दृते दृंह मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्,
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे,
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ।

यजु ३६।१८

(दृते) हे सर्वाधार परमात्मन् ! (सर्वाणि भूतानि) समस्त प्राणिवर्ग (मा) मुझको (मित्रस्य क्षक्षुषा) मित्र की आंख से (समीक्षन्ताम्) देखें। (अह्म्) मैं भी (सर्वाणि भूतानि) सब प्राणियों को (मित्रस्य चक्षुषा) मित्र की दृष्टि से (समीक्षे) देखता हूँ या देखूं । (वयम् मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे) हम सब लोग एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें ।

इस मंत्र में परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि सब लोग मुझे मित्र की दृष्टि से देखें और मैं सबको मित्र की दृष्टि से देखूं । मित्र की दृष्टि से देखना कैसे संभव है ? समाज का निर्माण व्यक्ति के द्वारा होता है । व्यक्तियों का समूह समुदाय होता है और समुदायों का समूह समाज । समाज के निर्माण के लिए व्यक्ति का निर्माण आवश्यक है । व्यक्तित्व के निर्माण में यम नियमों का समुचित रूप से पालन करने से व्यक्तित्व का निर्माण होगा । यम नियमों में पहला नियम अहिंसा का है । अहिंसा का अर्थ है यम से, वचन से या कर्म से, किसी को कष्ट न पहुँचाना । जब यह अपने आपको ऐसा बना लेंगे कि किसी को कष्ट न पहुँचाएं तो हमें भी कोई कष्ट नहीं पहुँचायेगा । इसके लिए मुझे बचपन में पढ़ी हुई एक कथा याद आ रही है ।

एक विशाल कांच के महल में न जाने किधर से एक भटका हुआ कुत्ता घुस आया। हजारों कांचों के टुकड़ों में अपनी शक्ल देखकर वह चौंका। उसने जिधर नजर डाली उधर हजारों कुत्ते दिखाई दिए। उसने समझा कि ये उस पर टूट पड़ेंगे और उसे मार डालेंगे। वह भूंकने लगा। उसे कुत्ते भूंकते हुए दिखाई पड़ते। उसका दिल धड़कने लगा। वह और जोर से भूंका। सब कुत्ते अधिक जोर से भूंकते दिखाई दिए। आखिर वह उन कुत्तों पर झपटा, वे भी उस पर झपटे। बेचारा जोर-जोर से झपटा, उछला, कूदा, भूंका और चिल्लाया। अन्त में गश खा कर गिर पड़ा।

कुछ देर बाद उसी महल में दूसरा कुत्ता आया उसको भी हजारों कुत्ते दिखाई दिए। वह डरा नहीं, प्यार से उसने अपनी दुम हिलाई। सभी कुत्तों की दुम हिलती दिखाई दी। वह खूब खुश हुआ और कुत्तों की ओर अपनी पूंछ हिलाता हुआ बढ़ा। सभी कुत्ते उसकी ओर दुम हिलाते हुए बढ़े। वह प्रसन्नता से उछला, कूदा, अपनी ही छाया से खेला, खुश हुआ और फिर पूंछ हिलाता हुआ बाहर चला गया।

यह संसार इसी शीशे के महल की तरह है। अपने स्वभाव की छाया ही उस पर पड़ती है। आप भले तो जग भला' 'आप बुरे तो जग बुरा।' अगर आप प्रसन्न चित्त रहते हैं, दूसरों के दोषों को न देखकर उनके गुणों की ओर ध्यान देते हैं तो दुनिया भी आपसे नम्रता और प्रेम का व्यवहार करेगी।

वास्तव में उस कुत्ते की भांति ही हम अपना स्वरूप संसार में देखते हैं। यदि हम अपने मन को विश्व के प्रति मैत्री भावना से भरकर देखते हैं तो विश्व भी हमें मित्र की तरह देखता है। यदि हम विश्व को शत्रु की भावना से देखते हैं तो वह हमें अपना

शत्रु समझता है। वेद इस विषय में कहता है :—

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमिवः।
अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥

अथर्व वेद काण्ड ३, सूक्त ३०, मं १॥

इस मंत्र का भाव यह है कि वेद—जो प्रभु की वाणी है कहता है कि मैं तुमको (सहृदयम्) हृदय वाला (सांमतस्यम्) मनवाला और (अविद्वेषम्) द्वेष रहित (कृणोमि) बनाता हूँ। (अन्य) एक मनुष्य (अन्यम्) दूसरे मनुष्य के साथ (अभिहर्यत) ऐसा व्यवाहार करे (इव) जैसे (अघ्न्या) गाय (जातम्) नव उत्पन्न (वत्सम्) बछड़े के साथ करती है।

हम मनुष्य कैसे बनें? मनुष्यता के लिए हृदयवाला, मस्तिष्क वाला और द्वेष न करने वाला होना चाहिए। सबसे पूर्व 'सहृदय' बनने की बात कही गई है। 'सहृदय' का मतलब है, दूसरों के दुःखों और कष्टों को अपना समझना, उनके दुःख से दुःखी और सुख में सुखी होना, करुणा और दया का हृदय में होना तथा सरस बनना सहृदयता है। लिंकन अमेरिका के राष्ट्रपति थे। एक बार पार्लियामेंट में बड़ी तेजी से जा रहे थे। रास्ते में उन्होंने देखा कि कुछ लड़के एक सूअर के बच्चे से बड़ा निर्भीक खेल रहे हैं। वे उसे उठाकर ले गए और नाली में गिरा दिया। नाली से जब वह मेहनत करके बाहर आता तो वे उसे फिर धकेल देते। वह सब तो हंस रहे थे पर उस सूअर के बच्चे का कष्ट जब लिंकन से नहीं देखा गया तो वे उस ओर बढ़े और कपड़ों की पर्वाह किए बिना पार्लियामेंट तक उसको गोद में लेकर भागते चले गए।

स्वामी श्रद्धानन्द की सहृदयता का वर्णन कहां तक करूं। वह मनुष्य दुःखियों की सेवा और पीड़ा को दूर करने के लिए

पृथ्वी पर अवितरित हुआ था।

सन् १९१६ ई० की एक घटना मेरे गुरुकुल कुरुक्षेत्र के आचाय श्री पं० सोमदत्त विद्यालंकार सुनाते हैं। पंचम श्रेणी के विद्यार्थी देवदत्त को टाइफाईड हो गया था। उसकी दशा ठीक नहीं थी। विद्यार्थियों की रात को उसकी सेवा के लिए ड्यूटी लगी हुई थी। श्री सोमदत्त जी एक विद्यार्थी थे और वे रात को १२-३० बजे ड्यूटी के समय एक कुर्सी पर बैठकर पुस्तक पढ़ रहे थे। विधार्थी को उलटी आती प्रतीत हुई और घबराहट के मारे वह रोने लगा। वह नीचे पड़ी चिलमची को उठाकर रोगी के सामने रखने के लिए झुके पर वह पानी और थूक से भरी हुई थी, इसलिए सोमदत्त जी भंगी को बुलाने गए। और भंगी को साथ लेकर जब वे लौटे तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उन्होंने देखा कुलपिता महात्मा मुन्शीराम रोगी ब्रह्मचारी के पास झुके खड़े, कै करा रहे थे। वह कै कर रहा था स्वामीजी अपनी अंजली में क करा रहे थे। उसके कै कर लेने के बाद उन्होंने बाहर जाकर अपने हाथ साफ किए और बीमार के सिरहाने बैठकर उसका सिर सहलाने लगे। पंडित जी ने बताया कि उस समय मैं जमीन की तरफ आंखें गडाए खड़ा था। वे मेरी तरफ देखकर बोले "तुम कहां चले गए थे?" यह कहता था मुझे कै आ रही है। चिलमची भरी पड़ी थी इसलिए मैं उसे साफ कराने के लिए भंगी बुलाने गया था। स्वामी जी ने कहा "तो तुम जाकर आराम करो। इसकी सेवा के लिए किसी अन्य को भेजो। तुमसे सेवा हो चुकी, जरा सोचो कि कै क्या तुम्हारी और भंगी की प्रतीक्षा करती।" सोमदत्त जी ने कहा मैं शर्म के मारे जमीन में गड़गया। मेरा कर्त्तव्य कुलपिता ने बता दिया। यह है सहृदयता। यह है सेवा।

"सेवाधर्मः परम गहनो योगिनामप्य गम्यः।"

यह सेवा धर्म अत्यन्त कठिन है अपने जीवन की एक घटना सुनिए और सहृदयता का दृश्य देखिये। मैं प्रथम कक्षा का विद्यार्थी था। बहुत पतला, सुकड़ा अपनी कक्षा में आयु तथा ऊंचाई में सबसे छोटा। वैसे तो मैं प्रविष्ट होने के लिये गुरुकुल कांगड़ी गया था पर मेरे निर्बल शरीर कम आयु और पीले चेहरे को देखकर वहाँ के अधिकारियों ने अपने यहाँ प्रविष्ट करने से इन्कार कर दिया। उन दिनों आज कल की भांति जिस जिसका प्रवेश नहीं हो जाता था। प्राचीन काल के गुरुकुलों की तरह बुद्धि, स्वास्थ्य एवं चरित्र की परीक्षा के बाद गुरुकुलों में विद्यार्थी का प्रवेश होता था। और मैं तो स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत ही कमजोर था। उत्तर प्रदेश के पूर्वीय जिलों में पेट में केचुए पड़ जाते हैं और उससे स्वास्थ्य खराब हो जाता है। मेरे भी थे जो बाद में निकल गए और मैं स्वस्थ हूँ। गुरुकुल कांगड़ी से निराश होकर गुरुकुल कुरुक्षेत्र ले जाया गया। वहाँ वालों ने तीन मास के परीक्षण के लिए रखा पर मैं उन तीन महीनों में पूर्ण स्वस्थ हो गया। कुरुक्षेत्र स्वास्थ्य प्रद स्थान है। जब स्वामी श्रद्धानन्द कुछ अस्वस्थ्य होते थे अथवा कार्यभार से थक कर कुछ विश्राम करना चाहते थे या किसी समस्या का समाधान करना होता था तो गुरुकुल कुरुक्षेत्र की उत्तर दिशा में बने हुये ऊंचे दुमंजिले कमरे में रहा करते थे।

एक दिन हमने सुना स्वामी जी आ रहे हैं, गुरुकुल में आनन्द और उत्साह की धारा बह गई। स्वागत की तैयारियाँ होने लगीं। वह भी दिन आ गया जब स्वामी जी महाराज गुरुकुल में आ गये। उनके सत्कार के लिये पंक्तिबद्ध विद्यार्थी

हाथ में फूल लिए खड़े हो गये। कद की दृष्टि से ऊंचे विद्यार्थी आगे थे। मैं गुरुकुल का सबसे छोटा विद्यार्थी सबसे पीछे था। स्वामी जी प्रसन्न मुख प्रत्तेक को प्रसन्न करते मेरे पास भी पहुँचे। उन पर फूल डालने की उत्सुकता और जल्दी का फल यह हुआ कि जब वे मेरे सामने थे मेरे हाथ से फूल जमीन पर गिर गए। मैंने उन्हें दोनों हाथों से ढेरी के समान उठाया। कम फूल और अधिक मिट्टी मेरे हाथ आई। वह मेरे सामने से आगे न चले जायें, इसलिए मैंने पुष्प और धूलि की अंजलि स्वामी जी पर बरसा ही तो दी। उनका चेहरा और कपड़े धूल से भर गये। मेरे कक्षाध्यापक जिन्हें वहाँ अधिष्ठाता कहा जाता है, कुछ नाराज होने लगे परन्तु वह दृश्य मुझे कभी न भूलेगा कि उन्होंने अपनी विशाल गोद में मुझे उठा लिया मुस्कराते हुए हंसते चेहरे से उन्होंने प्यार किया। क्या हुआ यदि मैंने उन पर धूल ही फेंकी। मैं तो उनका पुत्र था। फूल और धूल में क्या भेद ? घृणा और तिरस्कार से, हृदय की भावना से रहित दिये हुए फूल भी अपना महत्व नहीं रखते और श्रद्धा से दी गई उस धूलि का श्रद्धानन्द ने हजारों फूल की मालाओं से अधिक महत्व दिया। है न प्रेमपूर्ण वात्सल्य भावना इसे ही कहते हैं सहृदयता। इसलिए मनुष्य के लिये सबसे पहले हृदय वाला होना चाहिये और जब वह हृदय वाला होगा तब सारी दुनिया उसे मित्रवत् लगेगी।

हृदय प्रतीक है प्रेम का, मन या विचार प्रतीक है बुद्धि का, अविद्वेषिता प्रतीक है विश्वहित की, हृदय में प्रेम हो और बुद्धि न हो तो विश्वहित में बाधा पड़ती है, नादान दोस्त से दाना दुश्मन अच्छा समझा जाता है।

आपने एक कहानी सुनी होगी। एक व्यक्ति ने एक बन्दर

पाल रखा था। वह अपने स्वामी का अनन्य भक्त या प्रेमी था। स्वामी सोच रहे थे और एक हड्डा बार-बार आकर उन पर बैठ जाता था। बन्दर पास में बैठा अपने स्वामी की देख-रेख कर रहा था। उसी से वह हड्डा वा भिड़ (बर्र) स्वामी की नाक पर बैठा। बन्दर ने देखा। वह पास में पड़ा हुआ पत्थर उठा लाया और मालिक के प्रेम से प्रेरित होकर, भिड के काटने से बचाने के लिए उसने पत्थर उठाकर मालिक की नाक पर दे मारा। भिड़ तो उड़ गई पर स्वामी की नाक घायल हो गई। यह बन्दर प्रेम भरे हृदय वाला तो था पर मस्तिष्क शून्य था। बुद्धिहीन सहृदयों की सख्या संसार में बहुत अधिक है। लाखों मातयें मूर्खता भरे प्रेम के कारण अपनी सन्तान को नष्ट कर देती हैं। हजारों प्रेमी प्रेम का अनुचित प्रदर्शन करते है। बुद्धि-हीन प्रेम के कई रूप हैं, कहीं मोह है, कहीं मद, कहीं प्रमाद, कहीं कामुकता। इन सबके हृदय में प्यार है। पर यह प्यार ढोंग है। वेद मन्त्र कहता है कि सहृदयता के साथ सौमनस्यता की आवश्यकता है। बुद्धिमान मित्र आपका हितैषी है। इस प्रकार इस मन्त्र में 'सहृदयम्' शब्द का अर्थ है दूसरे के सुख-दुःख को समझना, दयालुता और रसिकता। 'सांमनस्यम्' से अभिप्राय मन की एकता से है तथा 'सामनस्यम्' का अर्थ 'मस्तिष्क वाला' होने से भी है।

मानव बनने के लिए सहृदय और 'सामनस्य' बनने के साथ-साथ अविद्वेष होना भी आवश्यक है। 'आरे देवा द्वेषो अस्मद्युणेतम' (ऋ. १०-६९-१२)। हे विद्वान् जनो! बैर को हम से दूर करो। बैर को द्वेष भी कहते हैं। द्वेष की परिभाषा करते हुए पातंजलि ऋषि ने लिखा है :—

दुःखानुशयी द्वेषः ।
सुखानुशायी रागः ॥

जिस वस्तु से अथवा जिस मनुष्य से दुःख की प्राप्ति हो, उससे दूर रहने की इच्छा द्वेष है और जिससे सुख की प्राप्ति हो, उसकी प्राप्ति की बार-बार इच्छा होने को राग कहते हैं। जो व्यक्ति हमारी अर्थहानि करता हो, समाज की हानि करता हो उसे कोई हानि न पहुंचायें यह तो सम्भव है पर उससे परे रहने की इच्छा भी मन में न रखना और उसका भला करना यह 'अविद्वेष' की भावना है। यही उच्च मानव बनना है।

महात्मा बुद्ध जा रहे थे, एक नगर से एक और नगर को। रास्ते में एक जगल पड़ता था। नगर निवासियों को जब यह पता चला तो वे बुद्ध भगवान् से बोले 'महाराज ! इस जंगल के मार्ग से न जाइए, इसमें एक भयानक अगुलीमाल नाम का डाकू रहता है वह यात्रियों को लूट लेता है, उन्हें मार डालता है और उनकी अंगुली काटकर अपने गले की माला में डाल लेता है। आप, इसलिये इस रास्ते से मत जाइये पर भगवान् बुद्ध न माने—चलते गए। जब वे जंगल के घने भाग में पहुंचे तो अंगुलीमाल ने उन्हें देखा। वह आगे बढ़ा और बोला, 'ठहरो, भगवान् बुद्ध तो उसके विषय में जान ही चुके थे। हंसते हुए खड़े हो गये। अंगुलीमाल ने पूछा—'जानते हो, मैं कौन हूं ?" तुम अंगुलीमाल हो बुद्ध ने कहा। "तुम इस जंगल में क्यों आये ?" अगुलीमाल को सम्बोधित करते हुए बुद्ध ने मुस्कराकर कहा, "तुम्हें देखने के लिये मेरे भाई ? तुम्हें अपना प्यार देने के लिए, आशीर्वाद देने के लिए।" अंगुलीमाल आश्चर्य से बोला, "परन्तु मैं एक डाकू, कातिल, खूनी, राक्षस।"

भगवान् बुद्ध ने उसके पास जाकर मुस्कराते हुये कहा, "नहीं तुम मनुष्य हो, अपने आप से भूले हुए, सचाई को भूले हुए। मैं गौतम बुद्ध हूं। आओ मैं तुम्हें बताऊं कि सच्चाई क्या है ?" और अंगुलीमाल बच्चे की तरह रोता हुआ उनके चरणों पर गिर गया। सिसकता हुआ बोला, "मुझे बचाओ भगवन् ! मुझे बचाओ ! यह है सहृदयता का प्रभाव।

स्वामी शंकराचार्य महान् ईश्वर भक्त हुए हैं। शंकर ने 'सर्वखल्विदं ब्रह्म' यह सारा संसार ब्रह्म है। 'ब्रह्म सत्यं जगमिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।' ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है; जीव ब्रह्म ही है। का प्रचार किया। आचार्य शंकर को जब काश्मीर में विष दिया गया और उनका मरण काल समीप आया तो भी उन्होंने विरोधियों के लिये ज्ञान और हित की कामना की।

काशी में शास्त्रार्थ के बाद महर्षि दयानन्द पर पत्थर, ईंट, गोबर, धूल और जूते आदि फेंके गए। गालियाँ दी गईं। रास्ते भर बहुत से लोग स्वामी दयानन्द जी को गालियाँ देते हुए जा रहे थे। सन्त ईश्वर सिंह ने देखा और वे स्वामी जी को सान्त्वना देने के विचार से आनन्दोद्यान में पहुंचे। ऋषि दयानन्द के चेहरे पर न तो विवाद की छाया थी और न विरोधियों के प्रति क्रोध। ईश्वर सिंह से बहुत देर तक बात भी हुई सन्त ईश्वर सिंह ने देखा कि महर्षि के मुख से एक बार भी विरोधियों की निन्दा या अपमान का एक भी शब्द न निकला और वे मानव की कल्याण कामना की बातें करते रहे। चलते समय दयानन्द के चरण छू कर सन्त ईश्वरसिंह ने कहा "महाराज ! आज तक मैं आपको वेदशास्त्र का ज्ञाता एक पण्डित मात्र समझता था परन्तु आज पण्डितों के उत्पात और

भयंकर आंधी से भी आपके हृदय सागर में राग और द्वेष की एक भी लहर उठते न देखकर मुझे पूर्ण निश्चय हो गया है कि आप वीतराग महात्मा और सिद्ध पुरुष हैं।"

ऋषि के जीवन की एक घटना और सुनिए।

गुजरात में स्वामी दयानन्द भड़ौंच पधारे वहाँ उन्होंने नर्मदा तटपर भृगु आश्रम में आसन जमाया। भड़ौंच में व्याख्यान माला प्रारंभ हो गई। वहां अपने शिष्यों सहित दक्षिणी पंडित आ पहुँचे। दक्षिणी पण्डित एक दिन स्वामी जी के व्याख्यान में पहुँचे—उनके दल के शिष्य भी थे। तर्जनी अंगुली से तर्जना करते हुए उसने स्वामी जी प्रति अनेकानेक कठोर शब्दों का प्रयोग प्रारंभ कर दिया। स्वामी जी के भक्त इस दुर्व्यवहार को न संभाल सके। उन्होंने दांत पीसते हुए कहा "भलमनसी से अब भी टल जा, नहीं तो तेरी कपाल क्रिया अभी किए देता हूं। यदि तूने महाराज की ओर अब अंगुली भी उठीई, तो तेरी हड्डी पसली एक कर देंगे।"

इस पर स्वामी जी ने अपने आदमियों को लक्ष्य करके कहा "बलदेव! कोप किस पर करते हो? ये तो हमारे भाई हैं। इन्हीं की कल्याण कामना करते रात दिन बीतते हैं। बलदेव! शान्त होओ, मेरे माना-प-मान पर ध्यान मत दो। धर्मोपदेशक को तो भूमि के सदृश सहन शीलता संपादन करनी चाहिए।' इस पर बलदेव शान्त हो गए। पन्डित जी लज्जित से होकर भाग निकले।

इसे कहते हैं सहृदयता, इसे कहते हैं सामनस्कता और यह है शत्रु या विरोधी के प्रति अविद्वेष की भावना है। इसे कहते हैं—

जो तोको कांटा बुवै, ताहि बोय तू फूल।
तोहि फूल के फूल हैं, वाको हैं तिरशूल ॥

अनूप शहर की बात है। एक दिन एक ब्राह्मण स्वामी जी के पास आया। बड़ी विनम्रता से नमस्कार करने के बाद पान भेंट किया। स्वामी जी ने ज्यों ही पान मुख में रखा और उसका रस लिया, तुरन्त उन्हें ज्ञात हुआ कि इसमें तो विष पड़ा हुआ है स्वामी जी ने उससे कुछ नहीं कहा वे गंगा के किनारे जाकर बस्ती-न्यौली क्रिया से विष बाहर निकाल दिया। उस समय अनूपशहर के तहसीलदार सय्यद मुहम्मद साहब थे। वे प्राय: नित्य प्रति स्वामी जी के पास आते थे और उनके सद्गुणों से प्रभावित होकर उनके परम भक्त बन गए थे। तहसीलदार साहब को विष देने की बात का पता चला तो उसे उन्होंने गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया।

अब वे यह सोचकर कि जेल में डालने से महाराज बहुत प्रसन्न होंगे, उन्होंने यह खबर महाराज को सुनाई। परन्तु, स्वामी महाराज प्रसन्न होना तो दूर उन्होंने तहसीलदार साहब से एक भी बात नहीं की। तहसीलदार साहब ने स्वाजी जी से कहा "महाराज आप मुझसे इस प्रकार अप्रसन्न क्यों हैं ? मुझसे क्या अपराध हुआ है ?" स्वामी जी ने गंभीरता से कहा "मैंने सुना है, आपने मेरे कारण एक मनुष्य को आबद्ध किया है। परन्तु मैं तो संसार को बन्धन मुक्त कराने के लिए आया था परन्तु आपने मेरे लिए एक व्यक्ति को कारागार में डाल दिया। यदि दुष्ट अपनी दुष्टता को नहीं छोड़ते, तो हम क्यों अपनी श्रेष्ठता का परित्याग करें।"

यह है अविद्वेष की भावना महाराज के जीवन की अन्तिम घटना उनकी उदार हृदयता, सहृदयता, क्षमाशीलता का एक

ज्वलन्त उदाहरण हैं। उन्होंने जगन्नाथ को बुलाकर कहा "जगन्नाथ ! मेरे इस समय मरने से मेरा कार्य सर्वथा अधूरा रह गया। आप नहीं जानते कि इससे लोकहित की कितनी भारी क्षति हुई है। अच्छा, विधाता के विधान में ऐसा ही होना था, इसमें आपका भी क्या दोष है ? लो, ये कुछ रुपए है, मैं आपको देता हूँ, आपके काम आएँगे। परन्तु जैसे भी हो राठौर राज्य की सीमा से पार हो जाओ। नेपाल राज्य में छिपने से ही आपके प्राणों का परित्राण हो सकता है। यदि यहाँ के नरेश को घुणाक्षर न्याय से भी इस बात का पता लग गया, तो वे आपका बिन्दु-विसर्ग तक विनष्ट करके ही विश्राम लेंगे। उनके प्रकोप के उत्ताप से आपका परिताप कोई भी न कह सकेगा, जगन्नाथ ! अब देर मत करो, जाओ, चुपचाप भाग जाओ। देखना, किसी को 'स्थाली-पुलाक-न्याय' से भी आपका कर्म ज्ञात न हो। मेरी ओर से सर्वथा निश्चिन्त रहना।"

यह है अहिंसा की साक्षात् मूर्ति, अविद्वेष की सौम्य प्रतिभा महर्षि दयानन्द के जीवन की अन्तिम घटना। जब मनुष्य में सहृदयता और सौमनस्य होगा तो दोनों भावनायें मनुष्य की विद्वेष भावना को दूर कर सकेंगी।

'अन्योऽन्यमभिहर्यत्' अर्थात् एक-दूसरे के साथ ऐसा व्यवहार करो जैसा गाय अपने नव-उत्पन्न बछड़े के साथ करती हैं। व्यवहार और अभिहार शब्द वि+अव् उपसर्ग लगने से व्यवहार और अभि उपसर्ग लगने से अभिहार शब्द बना है। दोनों शब्दों का अर्थ एक ही सा है परन्तु अभि उपसर्ग का प्रयोग वि और अव् की अपेक्षा अधिक प्राबल्य प्रकट करता हैं। इसको इस प्रकार समझ सकते हैं कि व्यवहार उचित एवं अनुचित दोनों प्रकार का हो सकता है। आप किसी से अच्छा भी व्यवहार कर सकते हैं और बुरा भी व्यवहार कर सकते हैं। परन्तु अभिहार सदा उचित ही होगा। वेद में उपदेश है कि एक दूसरे के साथ सदा अच्छा व्यवहार करना चाहिए। इस

अच्छे व्यवहार या सद्व्यवहार को अभिहार कहते हैं। सद् व्यवहार या अभिहार में सहृदयता, सौमनस्यता और अविद्वेष तीनों होते हैं।

स्वामी श्रद्धानन्द के जीवन में सद् व्यवहार के अनेक उदाहरण हैं। उनका हत्यारा अब्दुल रशीद पानी माँगता है, वे अपने सेवक को पानी लाने का आदेश देते हैं। विरोधी से भी इतना प्रेम। यह अभिहार है। यहाँ एक-दूसरे के प्रति सद्व्यवहार की भावना रखने की बात कही गई है। यह सद्व्यवहार कैसा हो, वेद ने इस मन्त्र में एक बड़ा सुन्दर उदाहरण दिया है। **'वत्सं जातमिवाघ्न्या'** जैसे नवजात बछड़े को 'अघ्न्या' न मारी जानेवाली गाय प्यार करती है।

शब्द तीन प्रकार के होते हैं—रूढ़ि, यौगिक और योगरूढ़ि। रूढ़ि शब्दों का कोई अर्थ नहीं होता। जिस वस्तु में जो गुण, कर्म या स्वभाव पाया जाय उसका वैसा ही नाम रखना यौगिक शब्द कहलाते हैं। ये धातुओं से बनते हैं। जैसे रक्षक, भक्षक आदि। तीसरे प्रकार के शब्द योगरूढ़ि कहलाते हैं। 'जलज' शब्द पहले यौगिक रहा होगा बाद में जब वह जल से उत्पन्न होनेवाले सभी पदार्थों के लिए न होकर केवल 'कमल' के लिए हो गया तो वह योगरूढ़ि हो गया।

यहाँ 'अघ्न्या' शब्द आया है। 'अघ्न्या' यहाँ गाय के लिए होने से योगरूढ़ि है। अघ्न्या का अर्थ न मारने योग्य लेने पर सभी वस्तुएँ 'न मारने योग्य' कही जा सकती हैं। यहाँ गाय को अघ्न्या कहा है। गाय बछड़े से कैसा प्रेम करती है इसका एक परीक्षण किया गया। सुना जाता है कि बन्दरी अपने बच्चे से इतना प्रेम करती है कि मरे हुए बच्चे के लिए प्रेम होना तो ठीक है पर इसमें 'सौमनस्य' या बुद्धिमानी नहीं। परीक्षण यह किया गया कि गर्म बालू में बन्दरी को उसके बच्चे अपने पेट से चिपकाये रहती है। मरे हुए बच्चे के साथ छोड़ा गया। जब बन्दरी का पैर जलने लगा तो उसने अपने बच्चे को बालू पर लिटा दिया और स्वयं उसपर खड़ी हो गई। अब बताइए कि उसकी सहृदयता कहाँ गई ? उसका 'सौमनस्य' कहाँ गया ? गाय को

भी बछड़े के साथ गर्म बालू में भेज दिया गया। जब गाय का पैर जलने लगा तो वह स्वयं बालू पर लेट गई और बछड़े को अपने ऊपर कर लिया। यह है सच्चे प्रेम का, सहृदयता का उदाहरण। **'वत्सं जातमिवाघ्न्या'** इस दृष्टान्त का दार्ष्टान्त श्री गंगाप्रसाद उपाध्याय ने इस मन्त्र व्याख्या में बताया कि नवजात बछड़े की दो आवश्यकताएँ होती हैं स्नान और भोजन। यह गाय जीभ से उसकी गन्दगी को साफ कर अमृत-सम दूध पिलाती है। इसलिए माता और विशेषकर गोमाता का दृष्टान्त हमको यह शिक्षा देता है कि अपने सम्पर्क में आनेवाले सभी मनुष्यों की शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक शुद्धि का विचार रखें। उनको गाय की भाँति सभी दृष्टियों से शुद्ध करके हम भी अस्पृश्य को स्पृश्य बना दें और उसके बाद आजीविका आदि के द्वारा आर्थिक अवस्था भी सुधारने का प्रयत्न करें। हमारे मनों में घृणा द्वेष आदि के विकारों को दूर करने के लिए सहृदयता और सौमनस्यता की परम आवश्यकता है। ये दोनों बातें गाय (अघ्न्या) में पाई जाती है अतः मूर्तरूप में उससे हमें प्रेरणा मिल सकती है। वेद इसे ही मनुष्यता मानता है। □

मनुष्य से उत्तम कोई नहीं

मैक्समूलर ने अपनी पुस्तक 'इण्डिया ह्वाट कैन इट टीच अस' में लिखा है—"अगर मैं विश्व-भर में से उस देश को ढूँढ़ने के लिए चारों दिशाओं में आँखें उठाकर देखूँ जिसपर प्रकृति देवी ने अपना सम्पूर्ण वैभव, पराक्रम तथा सौन्दर्य खुले हाथों लुटाकर उसे पृथ्वी का स्वर्ग बना दिया है, तो मेरी अंगुली भारत की तरफ उठेगी। अगर मुझसे पूछा जाय कि अन्तरिक्ष के नीचे कौन-सा वह स्थल है जहाँ मानव के मानस ने अपने अन्तराल में निहित ईश्वर-प्रदत्त अन्यतम सद्भावों को पूर्णरूप से विकसित किया है, गहराई में उतरकर जीवन की कठिनतम समस्याओं पर विचार किया है, उनमें से अनेकों को इस प्रकार सुलझाया है जिसको जानकर प्लेटो तथा काण्ट का अध्ययन करने-वाले मनीषी भी आश्चर्यचकित रह जायें, तो मेरी अंगुली भारत की तरफ उठेगी। और, अगर मैं अपने से पूछूँ कि हम यूरोप के वासी—जो अब तक केवल ग्रीक, रोमन तथा यहूदी विचारों में पलते रहे हैं, किस साहित्य से प्रेरणा ले सकते हैं जो हमारे भीतरी जीवन का परिशोध कर उसे उन्नति के पथ पर अग्रसर करे, व्यापक बनाये, सही अर्थों में मानवीय बनाये, जिससे हमारे इस पार्थिव जीवन को ही नहीं, हमारी सनातन आत्मा को शान्ति मिले, तो फिर मेरी अंगुली भारत की तरफ उठेगी।"

ऐसा क्यों? भारत को यह महत्त्व देने का एक कारण यहाँ का व्यावहारिक जीवन सिखानेवाले वेद और उपनिषदों की पुस्तकें हैं।

और इन पुस्तकों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण मानव के नव निर्माण की योजना है। आज विश्व के सभी राष्ट्र आर्थिक एवं औद्योगिक उन्नति के लिए क्रमबद्ध योजनायें बना रहे हैं। रूस ने अपने राष्ट्र के विकास के लिए जो योजनायें बनाईं उन्हें पाँच और दस वर्षों में पूरा किया हैं। इन योजनाओं में सरकार यातायात की सुविधा के लिए सड़कें बनाती है, रेल की पटरियाँ बिछाती है, नदियों के बाँध बाँधती है, नहरें खोदती है जिससे अन्न की प्रभूत मात्रा उत्पन्न हो लोगों का पेट भर सके, मकानों का निर्माण करती है जिससे लोगों के रहने की सुविधा हो। रोटी, कपड़ा और मकान यही क्या मनुष्य की समस्यायें हैं? क्या मनुष्य इतने ही तक सीमित है? अगर मानव की ये भौतिक समस्यायें हल हो जायें—सबको रोटी मिलने लगे, कपड़ा मिलने लगे, मकान मिलने लगे—तो क्या मनुष्य की छीना-झपटी रुक जाएगी; क्या मनुष्य मनुष्य बन जाएगा।

आज अमेरिका धन में, सम्पत्ति में, विज्ञान में, कला में सर्वोन्नत देशों में है। उसके आकाश को छूते ऊँचे-ऊँचे भवन, बड़े-बड़े पुल, उसकी सुन्दर सड़कें उसके कारखाने, उसके स्त्री और पुरुषों की पोशाक तथा सौन्दर्य किसके मन को मोहित नहीं करते। पर क्या वहाँ के लोग सुखी हैं? अमेरिका के 'लायन्स क्लब' के जुलाई १९७१ ई० के अंक में डा० जैनबो रासन हाम ने एक लेख लिखा था जिसका शीर्षक था—

Rioting Burning Bloodshed,
Assasination in the United States.

अर्थात् "अमेरिका में दंगे-फसाद, आग लगाना, खून, कत्ल" अमेरिका में इन कुराफ़ातों की बढ़ती से वहाँ का सुशिक्षित वर्ग चिन्तित है। 'अवेक' नाम की पत्रिका में लिखा गया है कि अमेरिका की जनसंख्या ९ प्रतिशत बढ़ी है और अपराध संख्या ६२ प्रतिशत। वह पत्र लिखता है कि अमेरिका के लोग एक वर्ष में २१ करोड़ ५० लाख गैलन शराब पी गये। एक गैलन में ६ बोतलें आती हैं। इस शराब को

पीकर ड्राइवरों ने मोटरें चलाईं, उन्होंने ४६ हजार लोगों को मोटरों के नीचे कुचलकर मार डाला, ३८ लाख को घायल कर दिया। एक होटल का वर्णन करते हुए वहाँ के एक बहुत बिक्रीवाले पत्र में लिखा है "इस होटल में दस महीनों के अन्दर ३८ हजार चम्मच, १८ हजार तौलिए, ३५ हजार चाँदी के काफी पौट चोरी चले गये।" उन होटलों में गरीब तो जा ही नहीं पाते यह धनवानों की जिनके पास रोटी, कपड़ा, मकान बहुत अधिक है, कारस्तानी है। दुकानों से ५ अरब डालर का सामान अमेरिका के धनी घरानों की औरतें चुराकर ले गईं। वहाँ ५० अरब का जूआ खेला गया। अमेरिका का 'न्यूयार्क टाइम्स' लिखता हैं कि अमेरिका में उपदंश, मूत्र-कृच्छ्र (आतशक और सोजाक) की गन्दी बीमारियाँ निरन्तर बढ़ रही हैं। विश्वविद्यालयों में पढ़नेवाले नवयुवक लड़के और लड़कियों में ये रोग निरन्तर फैल रहे हैं। यही पत्र लिखता है कि अमेरिका में आत्म-हत्याओं की निरन्तर वृद्धि हो रही है।

वहाँ रिश्वत भी बहुत बढ़ गई है। अमेरिका के पत्र 'रीडर्स डाइजेस्ट' ने अपने दिसम्बर १९६६ के अंक में लिखा है कि केवल न्यूयार्क में पुलिस के बड़े-बड़े अधिकारियों में से प्रत्येक को प्रतिमास जो आय होती है वह औसतन बारह हजार डालर है। यदि बड़े अधिकारी रिश्वत लेते हैं तो छोटे भी लेते ही होंगे ? अमेरिका के बड़े-बड़े-धनियों के लड़के और लड़कियाँ आनाचार, नर-नारी के स्वातन्त्र्य और दुराचार के घोष लगाते हुए ये लोग विचित्र कपड़े पहनकर, बड़े बड़े बाल बढ़ाकर, कुर्ता टाँगों में और पतलून गले में लटकाकर विचित्र शक्लें बनाकर हिप्पी अमेरिका में तथा अन्य देशों में घूम रहे हैं। ये अपने देश के लिए और विदेशों के लिए भी समस्या बने हुए हैं। एल० एस० डी० की गोलियाँ खाकर समाधि की कल्पना करते हैं। नगर कितना सुन्दर है—देश कितना धनी है परन्तु उसके अन्दर कुरूपता छिपी हुई है—पशुता छिपी हुई है। ईरान एशिया के सम्पन्न

राष्ट्रों में है। वहाँ का हाल सुनिए—२० जून १९८१ ई० के बाद खोमैनी—जो एक धर्मगुरु भी हैं उन्होंने अपना जो रूप दिखाया वह विचारणीय है। 'प्रेस एशिया' में प्रकाशित इस देश का हाल सुनिए—खोमैनी की सरकार ने आदेश दिया कि कम उम्र के बच्चों और गर्भवती महिलाओं को मार डाला जाय। राजनैतिक बन्दी लड़कियों को फाँसी से पहले उनके साथ बलात्कार एवं संभोग किया जाय, बन्दियों का खून निकाल लिया जाय। प्रदर्शन के समय ही सड़कों पर लोगों को मार डाला जाय। बच्चों को बारूदी सुरंगों पर से जाने को कहा जाय, अध्यापकों को छात्रों पर जासूसी करने को कहा जाय। छात्रों को अध्यापकों पर और माता-पिता को बच्चों पर जासूसी करने को कहा जाय। यह है एक आधुनिक सम्पन्न देश की कहानी।

इसका कारण क्या है? निर्धनता, अशिक्षा, मकानों की कमी, भोजन का अभाव? नहीं। अमेरिका ब्रिटेन आदि में निर्धनता नहीं, काफी धनी लोग हैं, पढ़ाई का प्रबन्ध है, मकानों की भी कमी नहीं? तो ऐसा क्यों हो रहा है? इसका एक मात्र कारण हम पशुता की ओर बढ़ रहे हैं। मनुष्यता का निर्माण सोच भी नहीं रहे।

गीता में कृष्ण भगवान् ने अर्जुन को जीवन का तत्त्व समझाया। संसार में रहते हुए निष्कामवृत्ति से अपना धर्म पालन करने का उच्चतम आदर्श बतलाया। अर्जुन को उन सब बातों ने निरुत्तर तो कर दिया परन्तु सन्तोष नहीं हुआ। वह चाहता था कि प्रभु के विशाल विश्वरूप का दर्शन करूँ?

अब कृष्ण भगवान् ने अर्जुन को सन्तोष देने के लिए और प्रभु के वास्तविक रूप को दिखलाने के लिए गीता के अनुसार प्रभु के विशाल, अनन्त और देदीप्यमन रूप का दर्शन कराया। श्वेताश्वरोपनिषद् में वर्णित प्रभु के आश्चर्यजनक रूप को कृष्ण ने दिखलाया। अर्जुन ने देखा—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता, पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णाः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता, तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥

—श्वेता० ३।१९

अर्थात् वह परमात्मा हाथ-पैर रहित है परन्तु सबको ग्रहण करनेवाला है और सबसे अधिक तेज दौड़नेवाला है। आँखें नहीं हैं परन्तु सबको देखता है। वह कर्ण-विहीन है पर सब कुछ सुनता है। परमात्मा सब-कुछ जाननेवाला है, उसे जाननेवाला कोई नहीं है। उसी प्रभु को नेता, महान्, महाप्रभु और सर्वशक्तिमान् कहते हैं। श्वेताश्वरोपनिषद् ३।१७ मन्त्र में बताया गया है—

सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत् ॥

वह परमात्मा सब इन्द्रियों के सामर्थ्य से युक्त है परन्तु सभी इन्द्रियों से रहित है। वह सारे संसार का शासक और स्वामी है और संसार के सभी प्राणियों के लिए वह सबसे महान् आश्रय है।

उसके 'विश्वरूप' का उल्लेख कठोपनिषद् २।२० में बताते हुए कहा गया है—

अणोरणीयान् महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्यजन्तोः।
तमक्रतुं पश्यति वीतशोको, धातुः प्रसादान्महीमानमस्य ॥

प्रभु सूक्ष्म से सूक्ष्म है, महान् से महान् है। जीवात्मा के भीतर छिपा हुआ है। प्रभु की कृपा से ही प्रभु की महानता के दर्शन हो सकते हैं।

गीता में कृष्ण भगवान् ने इस विश्वरूप का दर्शन कराते हुए कहा है—

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥

—गीता० ११।१२

अर्थात् यदि आकाश में एक साथ हजारों सूर्यों की ज्योति उदय हो जाय, तो वह ज्योति उस भगवान् की ज्योति के समान शायद हो।

ज्योतिर्मय भगवान् की ज्योति से यह विश्व प्रकाशित हो रहा है। सूर्य के प्रकाश में, चन्द्र की चाँदनी में, तारों की टिमटिमाती ज्योति में, विद्युत् की चमक में, अग्नि के तेज में प्रभात की लाल ऊषा में, सन्ध्या की रँगीली छटा में उसी प्रभु का 'विश्वरूप' छाया हुआ है, उसी ज्योतिस्वरूप की ज्योति जगमगा रही है। कठोपनिषद् में यही तो कहा है—

न तत्र सूर्यो याति न चन्द्रतारकं,
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्,
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥

—कठोपनिषद् ५।१५

सूर्य के प्रकाश में उसका प्रकाश है, चाँद और तारों का प्रकाश भी उसके सामने कुछ नहीं, इनकी चमकती बिजलियों की गिनती ही क्या है ? उस प्रभु के प्रकाश का अनुगमन करने की यह सब कोशिश कर रहे हैं और उसके प्रकाश से प्रकाशित भी हो रहे हैं।

कृष्ण भगवान् ने जब प्रभु का यह अनोखा विश्वरूप दिखलाया तो उसे देखकर अर्जुन घबरा गया उसकी शान्ति भंग हो गई। वह हाथ जोड़कर बोला—"प्रभु का अपूर्व रूप देखकर मेरे रोंगटे खड़े हो गए हैं और भ्रम से मेरा मन व्याकुल हो गया है। इसलिए हे देव ! पहले का ही रूप फिर दिखाइए और प्रसन्न होइए।" तब कृष्ण ने अपना चिरपरिचित रूप मानवरूप दिखलाया तब अर्जुन होश में आया।

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन ।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥

मैं तो नहीं मानता कि कृष्ण ही भगवान् बनकर, अपना 'विश्वरूप' दिखलाने लगे। परन्तु इसका भाव है कि कृष्ण ने भगवान् के अचिन्त्य रूप का वर्णन किया तो अर्जुन घबरा गये और तब कृष्ण ने मनुष्यता

का स्वरूप उन्हें बतलाया। कृष्ण ने बतलाया कि हमें मनुष्य बनने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि हम मानव धर्म अनासक्त बुद्धि से निभाते रहें तो इसी 'मानुषं रूपम्' में उच्चतम शक्ति और आनन्द के दर्शन किये जा सकते हैं। मानव धर्म को निभाना ही जीवन की सबसे बड़ी साधना है। अपनी मानवता को मनुष्यता को भूलकर जो केवल 'दर्शन' के रहस्य को खोजने की कोशिश करता है, वह व्याकुल और बेचैन होगा। जिसने 'मानुषं रूपं' में ही 'रूपैश्वर' के दर्शन कर लिये उसने सब कुछ पा लिया। मुझे ईसा के जीवन का प्रसंग बहुत अच्छा लगता है। जब ईसा से किसी ने पूछा 'आपके सारे उपदेशों का सार क्या है?'

'अपने जैसा ही अपने पड़ोसी को प्यार करो' उत्तर मिला। इसकी व्याख्या करते हुए ईसा ने बतलाया "अगर कोई व्यक्ति अपने भूखे भाई को अपने दरवाजे से लौटा देता है, किसी प्यासे आदमी को पानी देने से इन्कार कर देता है या अपने बीमार पड़ौसी की सार-सँभाल करने की चिन्ता नहीं करता तो मौत के बाद खुदा उससे कहेगा कि जब मैं भूखा था तुमने मुझे खाना नहीं दिया; जब मैं प्यासा था तुमने मेरे खुश्क गले में पानी नहीं डाला; बीमार था तुमने मेरी सेवा नहीं की। वह इन्सान अचरज में पड़कर या हैरान होकर कहेगा। अरे प्रभु! ऐसा मैंने कब किया? आपके लिए ऐसा मैं क्यों कर करता? तब उसे जवाब मिलेगा 'संसार में तुमने मेरे बन्दों की सेवा नहीं की, इसलिए मेरी भी ख़िदमत नहीं की।' याद रखिए ईश्वर के दुःखी-गरीब बन्दों की याद यदि हमने नहीं की, मन्दिरों, गिरजा के घण्टों की आवाज में पड़ौसी की कराहों को नहीं सुना, मुक्ति और स्वप्न के सपनों के बीच अपना मानव धर्म पालना या 'मानुषं रूपं' को भूल गये तो हम न तो प्रभुभक्त होंगे और न मनुष्य। राजा शिवि भगवान् से प्रार्थना करते हैं—

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥

स्वामी श्रद्धानन्द ने गोली लगने के बाद मरने से पहले कहा था "मैं मुक्ति नहीं चाहता। चाहता हूँ कि मेरा पुनर्जन्म इसी देश में हो और मैं दुःखी देशवासियों की और इनके द्वारा मानवता की सेवा कर सकूँ।" स्वामी श्रद्धानन्द कहा करते थे—

जिसके हृदय में दूसरों के प्रति प्रेम, सहानुभूति और समवेदना नहीं वह कैसा मनुष्य ? और यदि हमने मनुष्यता खो दी तो फिर बचाने के लिए हमारे पास रह ही क्या जाता है ? हम भले ही महान् ज्ञानी हों, धर्मग्रन्थों का हमें गहन अध्ययन हो और रोज हम कई घण्टे पूजा पाठ में बिताते हों पर यदि हमने मानवता को भुला दिया तो हमारा सारा धर्म और ज्ञान बेकार है।" **'न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्'** मनुष्य से बढ़कर कुछ नहीं है।

प्राचीन काल के ऋषियों और महर्षियों ने 'मनुष्य' बनाने के लिए एक योजना तैयार की थी। शायद आप आश्चर्य करें कि 'मनुष्य' तो हम सब हैं ही तो मनुष्य बनाने की क्या बात है ? एक ग्रीक दार्शनिक दिन को लैम्प जलाकर एक पुल के पास, जहाँ से लोग आते जाते थे, खड़ा हो जाता था। लोगों ने पूछा 'आप दिन को लैम्प जला कर क्या देखते हैं ? उसने कहा 'रात को बत्ती जलाकर भी स्पष्ट नहीं दीखता मैं दिन के प्रकाश को भी अधिक उज्ज्वल बनाकर खोज रहा हूँ कि मनुष्य कहाँ है ? उसने कहा कि इतने लोग इस पुल पर से गुजर रहे हैं, परन्तु इनमें डॉक्टर, इंजीनियर, वकील, प्रोफेसर, कलक्टर, कप्तान, पुरोहित, पादरी तो दिखाई दे रहे हैं, परन्तु इनमें से मुझे कोई इन्सान नहीं नजर आया।

वैदिक संस्कृति का मुख्य ध्येय मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ ऐसी योजना को हाथ में लेना था जिससे नव-मानव का निर्माण हो सके। वह योजना थी संस्कारों द्वारा मानव का निर्माण करना, सुसंस्कृत और वास्तविक मानव बनाना। □

मनुष्य के निर्माण की योजना

मनुष्य के या मानव के निर्माण की योजना हमारे ऋषि-मुनियों ने बनाई। इसके लिए उन्होंने बालक के जन्म लेते ही उसे संस्कारों से घेर दिया। संस्कार भी एक नहीं, दो नहीं पूरे सोलह संस्कार एक के बाद एक। इन सोलह संस्कारों में भी ११ संस्कार तो बालक के ७-८ वर्ष की आयु में ही कर दिये जाते हैं। इन ग्यारह संस्कारों में गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोन्नयन तो बालक के इस संसार में—संसार में नहीं माँ के पेट से बाहर आने से पूर्व ही हो जाते हैं और जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, उपनयन तथा वेदारम्भ बालक के जन्म लेने के बाद जब वह परिपक्व नहीं बना होता तब किये जाते हैं और एक के बाद एक संस्कार की चोट उसपर की जाती है और भविष्य के जीवन-निर्माण का प्रयत्न किया जाता है।

वैदिक विचारधारा में पुनर्जन्म में विश्वास किया जाता है और यह माना जाता है कि बालक जन्म-जन्मान्तर के संस्कार साथ लाता है तथा उनपर माता-पिता का भी प्रभाव रहता है। इन संस्कारों को किस्मत या भाग्य नाम से भी पुकारा जाता है। इन संस्कारों के विषय में यह धारणा है कि इनमें परिवर्तन नहीं हो सकता। उदाहरणार्थ एक मनुष्य जन्म से ही अन्धा, लूला या लँगड़ा हो गया। या वह मनुष्य किसी विचित्र रोग से ग्रस्त हो गया। इसे हम भाग्य नाम देंगे। इस प्रकार बालक के निर्माण में पहला तत्त्व भाग्य है।

यदि भाग्य ही सब-कुछ है तो मनुष्य को कोई कर्म करने की आवश्यकता नहीं। इस संसार में दो तरह के जीव हैं। एक भोगयोनि के तथा दूसरे कर्मयोनि के। भोगयोनि के जीवों को अपने पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार भोग भोगने पड़ते हैं और प्रायः स्वतन्त्र विचारों के साथ कर्म नहीं कर सकते। स्वतन्त्र विचार का तात्पर्य है कि बिल्ली को रबड़ी बहुत पसन्द है और एक कटोरे में दूध पड़ा हुआ उसे मिल भी जाएगा, वहाँ कोई उसे रोकनेवाला भी नहीं होगा तब भी वह रबड़ी नहीं बना सकेगी। कभी हिंसक जीवों ने सभा करके यह निश्चय नहीं किया होगा कि **"अहिंसा परमो धर्मः"**। भारत में और अन्य देशों में भी सदियों से अहिंसा के प्रयोग होते आये हैं। यह प्रयोग व्यक्तिगत क्षेत्र में थे। महात्मा गांधी ने अहिंसा के शस्त्र का प्रयोग सार्वजनिक और सामूहिक ढँग से किया और उससे हमारी गुलामी की जंजीरें तोड़ने में बल भी प्राप्त हुआ परन्तु भोगयोनि के प्राणियों को इसपर विचार करने की शक्ति नहीं और न वे ऐसा कर ही सकते हैं, क्योंकि उनका जो भोग है उसे उन्हें भोगना है। पर, मनुष्य कर्मयोनि और भोगयोनि दोनों का प्राणी है। वह अन्धा, लूला, लँगड़ा या कोढ़ी जन्म से बन गया यह उसका भोग है। इसे भाग्य भी कह सकते हैं परन्तु क्योंकि मनुष्य 'स्वतन्त्रः कर्ता' कर्म करने में स्वतन्त्र है, अतः अन्धा होते हुए भी वह पुस्तकें पढ़ने लगा, बहरा या गूंगा होते हुए भी उसने भाषा सीखी और बातें सुनने लगा।

गुरुकुल कुरुक्षेत्र में कक्षा ५, ६ में पढ़ानेवाले अध्यापक प्रज्ञाचक्षु=आँखों से बिल्कुल अन्धे थे परन्तु व्याकरण और संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान्। आर्यसमाज ही नहीं, पाणिनीय व्याकरण की भारतवर्ष की प्रकाण्ड पण्डिता डॉ० प्रज्ञादेवीजी ने आर्यसमाज लल्लापुरा वाराणसी के आर्यसमाज के उत्सव पर आये वक्ताओं को उन्होंने अपने गुरुकुल में—जिसमें छात्रायें पढ़ती हैं, आमन्त्रित किया। वहाँ प्राचीन संस्कृत, व्याकरण और वेद-उपनिषदों की शिक्षा दी जाती है। पर, वहाँ का

दिव्य दृश्य, प्राकृतिक छटा और आधुनिक युग की सभी वैज्ञानिक सुविधाओं को देखकर आचार्याजी की प्रशंसा किये विना रहा नहीं जाता। वहाँ का भोजन अत्यन्त स्वादिष्ट और सात्त्विक। मक्खन, दही और दूध के साथ छात्राओं द्वारा बनाई हुई बर्फियाँ, रसगुल्ले आदि तो अब भी मुख से पानी गिरा ही देते हैं।

आचार्याजी ने मुझसे कहा कि आजकल एक नब्बे वर्षीय व्याकरण और संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित तथा आयुर्वेद के कुछ प्रयोग करनेवाले विद्वान् यहाँ आये हुए हैं, चलिए आप लोगों को उनसे मिलवाएँ। हम लोग चले। आचार्याजी ने मेरा परिचय कराया। मैंने उन्हें कहा कि मैं गुरुकुल कुरुक्षेत्र में पढ़ा हूँ। मेरा यह कहना था कि उन्होंने एकदम चिल्लाकर कहा 'अरे, तू सुरेश तो नहीं' तू, महावीर, क्षेत्रपाल अब (क्षितीश वेदालंकार) एक साथ पढ़ते थे। तू तो बहुत ही शरारती और चंचल था। आज ५०-५५ वर्ष बाद भी उनकी स्मृति-शक्ति को मैं भाग्य की बात नहीं कह सकता। यह तो कर्मयोनि की विशेषता है। भाग्य के अतिरिक्त मनुष्य में दूसरे वे संस्कार हैं जिन्हें वह इस जन्म को धारण करने के बाद प्राप्त करता है, परिस्थिति से समाज के सम्पर्क में आकर ग्रहण करता है, इन संस्कारों को 'पुरुषार्थ' नाम दिया जाता है। इस जन्म के पुरुषार्थ से नये संस्कार पड़ते हैं। हम बालक के सामने जिस प्रकार का वातावरण उत्पन्न करना चाहें, उनका बालक के निर्माण में प्रभाव होता है। परन्तु, प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या एक जन्म के संस्कार पिछले इकट्ठे अनन्त जन्मों के संस्कारों को मिटा सकते हैं ?

अमेरिका और रूस विज्ञान के द्वारा ऐसा प्रयत्न कर रहे हैं कि वीर्य के जीवाणुओं में ही ऐसा परिवर्तन कर दिया जाए कि शिशु नवीन संस्कारों को लेकर जन्म ले। वैज्ञानिकों का विचार है कि वीर्य में जिस कोष्टक से शिशु का जन्म होता है, उसमें कुछ ऐसे सूक्ष्म अणु होते हैं जिन्हें जीन्स कहा जाता हैं। ये जीन्स ही मनुष्य की लम्बाई

ऊँचाई, गोरापन, कालापन, बुद्धिमत्ता और बुद्धिहीनता आदि गुणों और अवगुणों के कारण होते हैं। यह विज्ञान जेनेटिक इंजीनियरिंग कहलाता है। इस इंजीनियरिंग द्वारा टेस्टट्यूब द्वारा बच्चा उत्पन्न किया जाता है। श्री हरगोविन्द खुराना को नोबल प्राइज मिला है। वे भी जेनेटिक इंजीनियरिंग की दिशा में कार्य कर रहे थे। हारवर्ड विश्वविद्यालय के अनेक व्यक्ति इस दिशा में कार्य कर रहे हैं। इन वैज्ञानिकों को यदि सफलता मिल गई तो प्रतिभाशाली व्यक्तियों के उत्पादक कोष्ठों के जीन्स से संसार में कालिदास, मैथिलीशरणगुप्त, जयशंकर प्रसाद, भामा, रवीन्द्रनाथ टैगोर, शैक्सपीयर, आइन्स्टीन, महात्मागांधी, महर्षि दयानन्द आदि अद्वितीय व्यक्तियों से संसार को भर देंगे। यह हुआ जैनेटिक इंजीनियरिंग की वैज्ञानिकों की योजना। इसको हम इस प्रकार कह सकते हैं कि नवमानव के निर्माण की जो योजना वैदिक संस्कृति ने संस्कारों द्वारा बनाई थी आधुनिक विज्ञान भौतिक उपायों द्वारा वैसा ही प्रयत्न कर रहा है। परन्तु, इस उपाय में और वैदिक संस्कृति के उपाय में अन्तर यह है कि जहाँ इससे राम, कृष्ण, महात्मा बुद्ध, गांधी, स्वामी श्रद्धानन्द, भामा और मैथिलीशरण गुप्त पैदा हो सकते हैं जहाँ कालिदास, भारवि आदि कवि, जहाँ शेक्सपीयर, न्यूटन, बनर्नडिशा और आइनस्टीन हो सकते हैं तो वहाँ रावण, कंस, दुर्योधन, दुःशासन, नादिरशाह, औरंगजेब, हिटलर और मुसोलिनी जैसे घातक व्यक्ति भी पैदा किये जा सकते हैं। यदि विज्ञान के द्वारा देवता पैदा करने की शक्ति मनुष्य के हाथ में आ जाएगी तो राक्षस पैदा करने की शक्ति भी आ जाएगी। अब यह बात उस वैज्ञानिक पर निर्भर करेगी कि वह राक्षस पैदा करेगा या देवता। उस जीवधारी मनुष्य, मनुष्य नामक प्राणी में मनुष्यता होगी—मानवता होगी, सत्य, न्याय, दया, करुणा, सहानुभूति और ब्रह्मचर्य आदि मानवीय गुण होंगे तो वह वैज्ञानिक वास्तविक मनुष्यों का निर्माण करेगा और इसके विपरीत निर्माणकर्ता वैज्ञानिक में

राक्षसीय भाव होंगे तो क्रूर-मानवता विहीन मनुष्यतनधारी पशुओं को उत्पन्न करेगा। वैदिक संस्कृति ने जिस नव-मानव निर्माण की पद्धति का आविष्कार किया है, उसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को मानव बनाने का प्रयत्न किया है। मान लीजिए वह जैनेटिक इंजीनियर जो अच्छे या बुरे मानवों को बना रहा है, उसी वैज्ञानिक का पहले निर्माण कर दिया जाय तो वह सद्भाव भरित मनुष्यों को वैज्ञानिक पद्धति से बनायेगा और उस मानव के निर्माण का प्रयत्न संस्कारों द्वारा किया जा सकता है। वैदिक संस्कृति—वैदिक विचार-धारा बच्चों को उत्तम परिस्थिति से घेरकर मानव को अच्छा मानव बनाना चाहती है।

धृतराष्ट्र का समय भी वैज्ञानिक उन्नति का काल था। उस समय नाना प्रकार के घातक अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण हो चुका था। अस्त्रों में ब्रह्मास्त्र अत्यन्त भयंकर अस्त्र था। रेडियो और टैलीविजन आदि भी बन चुके थे। संजय टेलीविजन द्वारा क्रिकेट आदि के मैच की तरह युद्ध का सारा वर्णन अन्धे धृतराष्ट्र को तत्काल बताते जाते थे। उस समय भी जीन्स बदलने का प्रयोग वैज्ञानिकों ने किया था। धृतराष्ट्र के सौ पुत्र थे। आलंकारिक रूप में वर्णन आया है कि एक घड़े में से सौ पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें पहला पुत्र दुर्योधन था जो महाभारत के संग्राम का कारण बना। वैज्ञानिकों का यह प्रयत्न कि वे जीन्स बदलकर शैक्सपीयर और आइन्स्टीन बनाने का प्रयत्न करेंगे परन्तु इस बात की क्या गारण्टी है कि उनके स्थान पर कंस दुर्योधन, औरंगजेब, तैमूरलंग और नादिरशाह पैदा न होंगे। जीन्स के अदला-बदली से संसार में जहाँ रामराज्य सम्भव होगा, वहाँ राक्षसराज्य की भी सम्भावनायें होंगी ?

वैदिक संस्कृति द्वारा प्रतिपादित संस्कारों से मानव का निर्माण नवमानव की उत्पत्ति संस्कारों पर होगी और उन संस्कारों के आधार माता-पिता और विद्यालयों में आचार्य होंगे ? माता-पिता और

विशेषकर माता के संस्कार बच्चों को कैसे प्रभावित करते हैं, इससे इतिहास के पृष्ठ के पृष्ठ भरे हैं।

महाभारत के पढ़नेवाले जानते हैं कि अभिमन्यु एक बाल वीर-योद्धा था। उसकी माँ का नाम सुभद्रा था। एक दिन जब अभिमन्यु अपनी माँ के पेट में था तो सुभद्रा के पति अर्जुन उसे चक्रव्यूह-भेदन क्रिया समझाने लगे और वह भी उसे बड़े लग्न से सुनने लगी। अर्जुन ने चक्रव्यूह भेदन की विधि तो समझा दी परन्तु बाहर निकलने का तरीक़ा वे न बता सके। परिणाम यह हुआ कि अर्जुन की अनुपस्थिति में अभिमन्यु चक्रव्यूह में घुस तो गया पर बाहर न निकल सका। इससे हमें यह पता लगता है कि माता के संस्कारों का प्रभाव बच्चे पर कितना होता है ?

मदालसा नाम की एक अत्यन्त पवित्र भावोंवाली महिला हुई है। उसके पेट में जब गर्भ था तो वह मग्न होकर गाया करती थी **'शुद्धोसि, बुद्धोसि, निरंजनोऽसि संसारमाया परिवर्जितोसि'**—अरे मेरे गर्भास्थ शिशु, मेरे बेटे ! तू शुद्ध है, बुद्ध है और संसार की माया से निर्लिप्त है। इसका प्रभाव हुआ कि मदालसा की तीन सन्तान ब्रह्मर्षि हो गईं। उन्होंने ऋषि-मुनियों का जीवन व्यतीत किया। विवाह आदि न कर, घर छोड़कर चिन्तन, मनन और ध्यान के लिए चल पड़ीं। उसके पति को चिन्ता हुई कि आखिर मेरा वंश कैसे चलेगा ? यह बात उसने मदालसा को समझाई और उसका चौथा पुत्र सर्वगुण सम्पन्न, राज्य के शासन में निपुण बहादुर क्षत्रिय बना।

इसी प्रकार यूरोप और अमेरिका के इतिहास में भी घटनायें मिलती हैं। इसी प्रकार अमेरिका के प्रैज़ीडैण्ट का हत्यारा भीटू जब माता के गर्भ में था, तब उसकी माता ने भीटू की हत्या कर अपना गर्भपात करने का प्रयत्न किया था। उसका गर्भपात तो नहीं हुआ परन्तु माता के गर्भ में विद्यमान उस बालक में क्रूरता के जो संस्कार पड़े उसी का परिणाम हुआ कि भीटू हत्यारा बन गया।

नैपोलियम के विषय में प्रचलित है कि जब वह अपनी माता के पेट में था, तब उसकी माता सेनाओं की परेड देखने में लगी रहती थी। जब वह सैनिकों को परेड करते देखती और उन्हें वीरतापूर्ण सैनिकों के गीत गाते हुए सुनती थी, तब उसका रोम-रोम हर्ष से प्रफुल्लित हो जाता था। परिणामस्वरूप इन गर्भावस्था के संस्कारों ने ही नैपोलियन को एक महान् योद्धा बना दिया।

प्रिंस बिस्मार्क के विषय में कहा जाता है कि जब वह माँ के गर्भ में था तब उसकी माँ घर के उन भागों को रो-रोकर देखा करती थी, जिन्हें नैपोलियन की फ्रैंच सेनाओं ने अपने उन्मादि में नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था। इन तीव्र संस्कारों का प्रभाव यह हुआ कि बिस्मार्क जब युवा हुआ तो, उसके हृदय में बदला लेने की तड़प जाग उठी।

प्राचीन ऋषियों ने मानव के निर्माण के लिए सोलह संस्कारों का विधान किया। आजकल के वैज्ञानिक मानव के रूपान्तरण की प्रक्रिया को 'जैनेटिक इंजीनियरिंग' कहते हैं परन्तु वैदिक विचारधारा की मानव के निर्माण की प्रक्रिया को 'मानवीय इंजीनियरिंग' कहा जा सकता है। जीन्स को बदलने की अपेक्षा संस्कारों को बदलना अधिक आसान है। संस्कारों को बदलना अपने हाथ की बात है। यह संस्कार तो प्रत्येक व्यक्ति घर में बदल सकता है।

वालक का जन्म माता के पेट से होता है। इसलिए संस्कारों का काम तभी से शुरू हो जाता है, जब से बच्चा माँ के गर्भाशय में अपनी यात्रा प्रारम्भ करता है। इसी कारण जब तक वह माँ के गर्भ में रहता है तव तक (१) गर्भाधान (२) पुंसवन और (३) सीमन्तोन्नयन संस्कार किये जाते हैं। इन संस्कारों की विस्तृत व्याख्या का समय और स्थान नहीं। गर्भाधान संस्कार विषय तृप्ति के साधन से मानव को मानवता की ओर ले जाता है। इस संस्कार को वैदिक संस्कृति नवीन आत्मा को निमंत्रण देने तथा उसके आह्वान का एक पवित्र यज्ञ मानती थी। श्रीकृष्ण और रुक्मिणी ने जब पुत्र कामना की तब

बारहवर्ष का ब्रह्मचर्य रखा जिसके परिणामस्वरूप एक सच्चे मानव प्रद्युम्न का जन्म हुआ।

दूसरा संस्कार पुंसवन है। सन्तान जब माँ के पेट में होती है तो दूसरे या तीसरे महीने बच्चे का शारीरिक विकास प्रारम्भ होता है सन्तान स्वस्थ, सुन्दर और उच्च विचारों की हो, इस विचार को माँ के मस्तिष्क में दृढ़ करने के लिए माता को सम्बोधित करके कहा जाता है 'आ वीरो जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः' दस मास तक तेरी कोख में रहकर तेरा पुत्र वीर उत्पन्न हो। जीवन के प्रारम्भ से ही माता अपने प्रवल एवं सशक्त विचारों से, अपनी वेगवती संस्कारों की धारा से अपने पुत्र को सच्चा मानव बनाने के लिए दिशा देने लगती थी। सीमन्तोन्नयन संस्कार में माता के बाल संवारे जाते हैं उसे सिर का, मस्तिष्क का विशेष ध्यान रखने को कहा जाता है। माता के सामने घी का कटोरा रखकर पूछा जाता है "किं पश्यसि" इस कटोरे में क्या देखती हो ? माता कहती है "प्रजां पश्यामि" में इसमें अपनी सन्तान को देखती हूँ। वह दिन-रात अपने बच्चे को सच्चा मानव बनाने की चिन्ता में लगी रहती है। नवमानव के निर्माण का यह क्रान्तिकारी समय है। माता ने यदि यह समय गन्दे उपन्यास आदि पढ़कर अपने मस्तिष्क को विकृत कर लिया तो निश्चित है कि 'नवमानव' न बनकर वह बालक राक्षस बन जाएगा। मनोविश्लेषणवाद के प्रवर्तक फ्रायड ने कहा है कि बचपन में, जब बच्चे की माँ लोरियाँ दे रही होती है, तब उसपर जो संस्कार पड़ जाते हैं वे मिटाये नहीं मिटते, वे आजन्म साथ रहते हैं। वैदिक ऋषियों ने फ्रायड से बहुत पहले इससे भी आगे बढ़कर कहा था कि माँ अपनी गोद में ही नहीं, अपने गर्भ में उस पर जो संस्कार डाल रही होती है वे गोद में दिये संस्कारों से भी प्रबल होते हैं गोद में बैठा बालक तो माँ से अलग शरीर में आ जाता है, गर्भ में पल रहा बालक तो माँ का शरीर होता है, माँ के शरीर तथा मन का अभिन्न अंग

होता है, अतः बालक पर अपने संस्कारों की अमिट निशानी डालने के लिए उस समय माँ को सचेष्ट तथा सतर्क रहना उचित है। इसी-लिए तो कहा गया है—

मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद ।

यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है। वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होता है तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है। वह कुल धन्य है। वह सन्तान बड़ा भाग्यवान् है, जिसके माता-पिता धार्मिक विद्वान् हैं। जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुँचता है उतना किसी से नहीं। जैसे माता सन्तानों पर प्रेम और उनका हित करना चाहती है, उतना अन्य कोई नहीं करता, इसलिए मातृमान् अर्थात् "**प्रशस्ता धार्मिकी माता यस्य स मातृमान्**" धन्य वह माता है कि जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न हो तब तक सुशीलता और मानवता का उपदेश दे।"

इस प्रकार बच्चे को मानवता की ओर ले-जाने में और उसे मनुष्य बनाने में माता का बहुत अधिक हाथ है। उस समय माता का हाथ विश्वकर्मा का हाथ है। वह जो चाहे कर सकती है। माता का हाथ पवित्रता, वात्सल्य, कारुण्य—कारणशरीर पर अपने वेगवान् शुभ संस्कारों और विचारों द्वारा पुराने संस्कारों को अच्छे में परिवर्तन करने वाले विश्वकर्मा का है। एक आदर्श माता के स्तनों का स्पर्श जिन होठों को हुआ हो, वे होंठ कभी अपवित्र वाणी का उच्चार नहीं करेंगे, निर्बलता का वचन मुँह से नहीं निकालेंगे, द्वेष का सूचन तक नहीं करेंगे, पाप को नहीं संवारेंगे, पौरुष की हत्या नहीं करेंगे और भोले लोगों को धोखा नहीं देंगे। वे सच्चे अर्थों में मानव बनेंगे।

उपनिषद् में आचार्य ऐहिक देवों का नाम बताते हुए सबसे पूर्व मातृदेवो भव—माता को देवता समझ कर पूजा कर, ऐसा कहते हैं इतना ही नहीं प्राचीन साहित्य में एक स्थान पर तो इतना कहा गया

"न मातुः परम दैवतम्" माता से बढ़कर कोई देवता नहीं। क्यों ? कभी सोचा है, आपने ? हमारे यहाँ ईश्वर माँ है। भारत माँ है। गौ माँ है। सरस्वती माँ है। गंगा माँ है। सब जगह माता की महिमा क्यों गाई गई है ? क्योंकि **"माता निर्माता भवति"** माता व्यक्ति का, संसार का, राष्ट्र का निर्माण करनेवाली होती है।

प्रसंगवश माँ की महिमा का मैं कहाँ तक गान करूँ ? आदर्श माता संसार को वास्तविक मानव प्रदान करती है। रामप्रसाद बिस्मिल की माँ, वीर भगतसिंह की माँ, शिवाजी और राणा प्रताप की माँ ने ऐसे-ऐसे मानव दिये जो सदा विश्व के गगन में चमकते रहेंगे। आदर्श माता के मन्दिर में कला रहेगी, पर कला के नाम पर विचरनेवाली विलासिता नहीं रहेगी। सच्ची माता के भवन में प्रेम का वायुमण्डल रहेगा, केवल सौन्दर्य का मोहन नहीं। माता के उपवन में प्राणों का स्पन्दन रहेगा, निराशा का निःश्वास नहीं। माता के लताकुंजों में विश्वप्रेम का संगीत गूँजेगा, परस्पर अनुनय का मूर्खता-पूर्ण कलकूजन नहीं। माता के विहार में स्वतंत्रता की धीरोदात्त गति होगी, उद्देश्यहीनता और स्खलनशीलता नहीं। माता के पीठ (स्थान) में ब्रह्मरस का प्रवाह होगा, विषयरस का उन्माद नहीं।

पृथ्वी तल पर जब कहीं असली माता आ जाती है तो पृथ्वी के वदन-कमल पर सुहास्य फैल जाता है, उस समय वनश्री का गौरव खिल उठता है। उस समय नगर-नगर में घर-घर में समृद्धि बढ़ जाती है। ऐसा लगता है कि सच्ची माँ शारदा का रूप धारण कर पृथ्वी पर प्रकट हुई। उस समय वीणा की झंकार प्रारम्भ हो जाती है, संगीत और समारोह आरम्भ हो जाते हैं। इसलिए शतपथ ब्राह्मण ने माता-पिता और आचार्य को बहुत महत्त्व देते हुए **"मातृमान् पितृमान्, आचार्यवान् पुरुषो वेद"** कहा है। इसके विपरीत यदि माता, पिता और आचार्य ठीक नहीं हुए तो पुत्र और शिष्य राक्षस बनेंगे और अपना सर्वनाश कर लेंगे।

कुछ दिन पूर्व (स्वराज्य प्राप्ति के बाद) की एक घटना सुनिए। पंजाब से जब पाकिस्तान बनने के बाद सिख और हिन्दू दिल्ली में आये तो यहाँ मांस, मुर्गे और अण्डे खाने का प्रचलन बहुत अधिक बढ़ गया, इसी समय एक बड़े विशाल मकान को खरीदकर एक सम्पन्न परिवार वहाँ रहने लगा। उस परिवार का यह नित्यकर्म था कि प्रतिदिन सवेरे उठकर पिताजी घर से बाहर जाकर एक मुर्गा खरीद-कर लाते और उनकी पत्नी एक चिलमची और चाकू ले जाकर ऊपर की छत पर रख आती थी। पिता मुर्गे को लेकर ऊपर जाते, उसकी गर्दन मरोड़ते और उसे तेज धारवाले चाकू से काट देते। मुर्गा थोड़ी देर छटपटाता और जब शान्त हो जाता तो माँ उसे साफ करती, उसको पकाती। माँ, बाप और बच्चे सब मिलकर और चटखारें ले-लेकर उड़ाते। यह उनका नित्य का काम था। एक दिन पिता ने एक मुर्गे की गर्दन काटी। चाकू, मुर्गा तथा चिलमची वहाँ छोड़कर जल्दी कहीं चले गये। माँ के पहुँचने से पहले दो लड़के वहाँ गये। दोनों अबोध थे। एक कुछ बड़ा और दूसरा कुछ छोटा। बड़े लड़के ने हाथ में चाकू लिया, अपने से छोटे भाई के बाल पकड़े, गर्दन मोड़ी और अपने पिताजी की शैली में चाकू उसकी गर्दन पर चला दिया। उसकी कोमल गर्दन चाकू का आघात सह न सकी और एक ही बार में मुर्गी की तरह कट गई। एक भयावह चीख के साथ वह वहाँ ही मर गया। उसकी चीख, खून और कटी हुई गर्दन को देखकर भाई घबरा गया तथा वह छत की एक साइड में भागा छत की रोक छोटी थी। परिणामस्वरूप वह नीचे गिर गया। अचानक सड़क के पार उसके पिता आ रहे थे। उन्होंने अपने बच्चे को गिरते देखा तो अपने होश हवास खोकर हड़बड़ाकर उसे बचाने को दौड़ पड़े। वे अभी सड़क पार न कर पाए थे कि एक कार की चपेट में आ गये। बुरी तरह घायल हो गये और वहीं उनके प्राण-पखेरू उड़ गये। दूसरी ओर वह बच्चा भी छत से गिर कर मृत्यु को प्राप्त हो गया। उधर माँ एक

टब में अपने कुछ मास के बच्चे को स्नान करा रही थी। अपने लड़के की कातर चीख को सुनकर वह घबराकर बच्चे को टब में ही छोड़-कर, ऊपर गई और अपने बच्चे की हालत देखकर घबरा गई। छोटे बच्चे की—जो ५-७ मास का था—बात भूल गई। परिणामस्वरूप वह टब में डूबकर मर गया। केवल मुर्गा काटने के माता-पिता के व्यवहार ने उस अत्यन्त सम्पन्न परिवार को नष्ट कर दिया। विपत्ति का अन्त यहाँ तक ही नहीं हुआ। अपने पति और तीनों बच्चों की मृत्यु को देखकर माता इतनी विह्वल हो गई कि घर से पागल होकर निकल गई और नंगे सड़कों पर घूमने लगी। कितनी कारुणिक और शोक की यह है घटना। परन्तु माता, पिता और गुरुओं के लिए प्रेरणा भी देती है कि मानवता के निर्माण के लिए अपने को मानव बनाओ तभी कल्याण हो सकता है।

मानव बनने के लिए योग्य माता, पिता और आचार्य की आवश्यकता है। यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात का एक शिष्य सीवियत जो वृद्ध हो चुका था, एक बार बाजार के चौराहे पर खड़ा हो गया और प्रत्येक पास से गुजरनेवाले से पूछने लगा, तुम कौन हो? उसके इस प्रश्न के उत्तर में किसी ने अपने को डाक्टर, वकील, प्रोफेसर, संगीतज्ञ, व्यापारी, अध्यापक, शिल्पकार आदि बताया पर अपने को मनुष्य किसी ने न कहा। उनके उत्तर सुनकर सीवियत ने जो कहा वह आज भी उसी प्रकार सत्य है। उसने कहा कि अब मुझे लगता है कि यूनान की संस्कृति नष्ट हो जाएगी क्योंकि यहाँ शिल्प-कार, प्रोफेसर, व्यापारी, वकील, डाक्टर और इन्जीनियर आदि तो बन रहे हैं "मनुष्य नहीं।"

मनुष्यता बड़ी चीज है। मनुष्यता सबसे श्रेष्ठ है। क्या हमारे देश की भी यह दशा नहीं, जो यूनान की थी, अतः यदि हम राष्ट्र-सेवा करना चाहते हैं तो हमें स्वयं मनुष्य बनना होगा और हमें सच्चा मानव बनकर विश्व का कल्याण करना होगा।

क्या आप मनुष्य और पशु में अन्तर करते हैं ? मनुष्य इस जगत् में नये निर्माण कर सकता है। मनुष्य कहते ही उसको हैं जो **'मत्वा कर्माणि सीव्यति'** (निरुक्त ३।७) जो विचार कर कर्म करे, अन्धाधुन्ध कर्म न करे। कर्म करने से पूर्व जो भली प्रकार विचारे कि मेरे इस कर्म का क्या फल होगा ? किस-किस पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा ? यह कर्म सर्वभूत साधक है या प्राणियों की पीड़ा का कारण होगा ? इसके विपरीत **"पश्यतीति पशुः"** जो केवल देखकर बिना विचारे कार्य करता है, वह पशु है अर्थात् दूसरे की सुन्दर वस्तु को देखकर, दूसरे के कष्ट का अनुमान किये बिना उसे ले लेनेवाला पशु है।

मनुष्य और पशु में एक अन्तर यह भी है कि मनुष्य में लम्बी स्मृति होती है, पशुओं में नहीं अर्थात् मनुष्य किसी बात को बहुत देर तक याद रख सकता है। उसकी लम्बी स्मृति का ही तो फल है कि उसने एक के बाद दूसरी उन्नति, दूसरा आविष्कार जारी कर रखा है। यदि उसमें यह विशेषता न होती तो वह अपने प्राप्त अनुभवों का उपयोग न कर पाता। इसके विपरीत यदि पशु में लम्बी स्मृति होती और उसमें पशुत्व भी रहता तो आपने जिस बैल या कुत्ते या जानवर को छड़ी मारी होती या जिस बन्दर पर पत्थर फेंका होता या जिस गदहे पर भार लादा होता वह उन बातों को स्मरण करके आपसे बदला लिये बिना न रहता।

मनुष्य और पशु में यह भी अन्तर है कि मनुष्य तुलनात्मक ज्ञान भी रखता है अर्थात् मनुष्य दूसरे से अपनी तुलना कर सकता है, जानवर नहीं।

इसके अतिरिक्त मनुष्य और पशु में यह भी अन्तर है कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है और मनुष्यता की उदात्त भावना उसमें विद्यमान है। सामाजिकता ही वह तत्त्व है जो मनुष्य को मनुष्य के निकट लाता है, उसे उदार बनाता है और दूसरे के लिए बलिदान की प्रेरणा देता है, मनुष्य वह है जो **'आत्मवत् सर्वभूतानि'** अपने समान

सबको देखता है। जिसमें आर्यत्व अर्थात् आगे बढ़ने की शक्ति है।

मानव शब्द हमारी समझ में आर्य शब्द को स्पष्ट करने वाला है। मानव शब्द सुनियन्त्रित जीवन, स्पष्टवादिता, शिष्टाचार उच्चता, सद् व्यवहार, साहस, विनम्रता, पवित्रता, आर्यत्व, दया, निर्बलों की रक्षा, उदारता सामाजिक कर्त्तव्यों के अनुष्ठान, ज्ञान की जिज्ञासा बुद्धि और सामाजिक आदर्शों का बोध कराता है। मनुष्य की भाषा में कोई भी ऐसा शब्द नहीं जो मानव शब्द से अधिक पवित्र इतिहास रखता हो।

मानव वह है जो प्रयत्नशील और अपने बाहर तथा भीतर की प्रत्येक वस्तु पर विजय प्राप्त करता है जो कि मानवी उन्नति के मार्ग में होती है। आत्मनियंत्रण उसके बाधक स्वभाव का प्रथम नियम है। वह मन और उसकी आदतों को अपने वश में करता है। वह प्रभु के राज्य को सदैव अपने भीतर और संसार में लाने का प्रयत्न करता है। वह अज्ञान, अन्धकार में, परम्परागत भ्रमों, रूढ़ियों, रिवाजों, विचारों और भली मालूम होनेवाली सम्मतियों के खोल में रहना पसन्द नहीं करता परन्तु वह चुनना और पसन्द करना और बुद्धि में लचकीला होना वैसे ही जानता है जैसे कि वह अपने निश्चय में पक्का और दृढ़ होता है, क्योंकि वह प्रत्येक वस्तु में सत्य, औचित्य, उच्चता और स्वतंत्रता की खोज करता है। मानव परिश्रमी और योद्धा होता है। वह सदैव प्रभु के राज्य को अपने भीतर और संसार में लाने को युद्ध करता है।

इसी मानवता के अभाव का ही तो परिणाम है कि आज मानव मानव को खा रहा है। मनुष्य अब मनुष्य नहीं रहा, वह बुद्धिमान् बाघ बन गया। बाघ के तो सिर्फ नख और दन्त हैं। जब कोई प्राणी पास आता है तभी उसे खाता है। लेकिन बुद्धिमान् मानव-बाघ पचासों मील से भी मार सकता है, किरणों से मारता है, सारे संसार के हिंसक तत्त्वों की खोज करके वह संसार को उजाड़ने की सोच रहा है।

दुनिया पर नजर डालिए। मानवता का क्षय देखकर आँखों से आँसू आ जाते हैं। इस समय कोई महलों में है तो कोई सड़कों पर भूखा सो रहा है। एक ओर विलास है तो दूसरी ओर कराह है, एक ओर चैन है तो दूसरी ओर अभाव है, एक ओर आनन्द है तो दूसरी ओर नाश और मृत्यु है। यह मानवता नहीं। इन परिस्थितियों से बचने का उपाय यह है कि हम सच्चे अर्थों में मानव बनें, आर्य बनें और सारे संसार को परिवार समझें। 'मनुर्भव' मनुष्य बनो यह हमारा लक्ष्य हो। मैथिलीशरण गुप्तजी ने कहा है—

मनुष्य मात्र बन्धु हैं, यही बड़ा विवेक है।
पुराण पुरुष स्वयंभू पिता प्रसिद्ध एक है।
फलानुसार कर्म के, अवश्य बाह्य भेद है।
परन्तु अन्तरैक्य में, प्रमाणभूत वेद है।
अनर्थ है कि बन्धु ही
न बन्धु की व्यथा हरे;
वही मनुष्य है कि जो,
मनुष्य के लिए मरे।
विचार लो कि मर्त्य हो न मृत्यु डरो कभी,
मरो परन्तु यों मरो, कि याद जो करें सभी,
हुई न यों सुमृत्यु तो, वृथा मरे वृथा जिए,
मरा नहीं वही कि जो जिया न आपके लिए।
यही पशु प्रवृत्ति है कि,
आप, आप ही चरे।
वही मनुष्य है कि जो,
मनुष्य के लिए मरे।

मानवता के लिए क्या करें ?

भारत ने अपनी वाणी द्वारा सदा मानवता की आवाज उठाई है। वेद, उपनिषद् एवं वैदिक वाङ्मय का लक्ष्य है कि मनुष्य मनुष्य बने। मनुष्य बनने के लिए चरित्र का उत्थान आवश्यक है।

ह्वेनसांग एक चीनी यात्री था। वह राजा हर्ष के समय ६३० ई० में भारत आया था और यहाँ की अनुपम शिक्षाओं और ग्रन्थों से इतना प्रभावित हुआ कि वह यहाँ के बहुमूल्य ग्रन्थों—जिनका उसने संग्रह किया था अपने देश ले जा रहा था। उसके साथ दो भारतीय भिक्षु—ज्ञानगुप्त और त्यागराज भी थे। जिस समय ह्वेनसांग का जहाज बंगाल की खाड़ी से गुजर रहा था, भयंकर तूफान आया और जहाज के कप्तान ने आदेश दिया कि यात्रियों की जान बचाने के लिए जहाज के बोझ को हल्का करना होगा। जिस किसी के पास जरूरत से ज्यादा बोझ हो वे उसे समुद्र में फेंक दें। इधर ह्वेनसांग ने अपने देश के लिए भारत के ज्ञान को उपयोगी समझकर गट्ठरों पुस्तकों का संग्रह किया था और ले जा रहा था। वह उन सब पुस्तकों को समुद्र में फेंकने ही वाला था कि ज्ञानगुप्त और त्यागराज वहाँ पहुँच गये। वे ह्वेनसांग से बोले कि इन पुस्तकों को तुम समुद्र में मत फेंको। इनमें जो ज्ञान भरा पड़ा है वह हजारों आत्माओं को जीवन का सन्देश दे सकता है। इसके स्थान पर हम दोनों जहाज का बोझ हल्का करने के लिए अपने को समुद्र में फेंक देते हैं। जब तक ह्वेनसांग नकारना ही चाहता था कि वे दोनों छलांग लगाकर लहरों में विलीन

हो गये। यह दृश्य देख ह्वेनसांग विचारों में डूब गया। वह वेद के इस उपदेश का स्मरण करने लगा कि **'ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धियाकृतान्'** बुद्धिमानों द्वारा निर्मित प्रकाशशील पथ की रक्षा करो और उसके प्रत्यक्ष प्रमाणस्वरूप इन भारतीय पुत्रों को देखकर उसने उस भूमि को नमस्कार किया जिसने ऐसे नर-रत्नों को उत्पन्न किया था जो विश्व में मानवता का, शान्ति का और जीवन का सन्देश गुंजा देने के लिए अपनी जान पर खेल गये।

बुद्ध का सन्देश सन्त महात्माओं का सन्देश था। योगदर्शन के सत्य, अहिंसा अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का सन्देश था। १९वीं शताब्दी में ऋषि दयानन्द ने फिर से इस मानवीय सन्देश को पुनरुज्जीवित किया। मनु ने लिखा था—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

भारत की शिक्षा चरित्र निर्माण को थी। भारत की शिक्षा ऐसे मानवों का और महिलाओं का निर्माण करना था जो संसार के बड़े-बड़े प्रलोभनों के आगे न झुकें और अपने चरित्र एवं मानवीय गुणों से विश्व को प्रभावित कर लें। वे व्यापार के क्षेत्र में हों, सरकारी या गैर सरकारी नौकरी कर रहे हों, शासन के क्षेत्र में हों उन पर कोई आँच न आ सके। **'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'** सारे संसार को आर्य बनाना लक्ष्य है पर अपने को आर्य यदि हमने नहीं बनाया तो संसार को क्या आर्य बनायेंगे। आज हमारे पास सब-कुछ है धन है, सम्पत्ति है, मकान है, मोटरें हैं रेडियो, टैलीवीजन, वीडियो और हवाई जहाज राकेट सब हैं परन्तु हममें मानवता का अभाव है। हम केवल अपने स्वार्थ में इतने गड़े हैं कि सब-कुछ होते हुए भी भाई, भाई को नहीं देख सकता। सब-कुछ पाकर हमने चरित्र और मानवता को खो दिया। यही कारण है कि वह प्रेम भावना कहीं नहीं जो मानवमात्र को एक समान देख सके। यजुर्वेद (११।५) मंत्र में वेदों ने उद्घोष किया था—

"शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः"

ऐ दुनिया के लोगों ! तुम सब भगवान् की सन्तान हो, वह अजर है, वह अमर है। एक पिता के पुत्र और पुत्री होने से तुम भाई-भाई हो, बहन-बहन हो अतः तुम बन्धु की भावना लाओ।

ऋग्वेद १०।१९२।२ मंत्र में कहा गया है—

सं गच्छध्वं संवदध्वं संवो मनांसि जानताम् ।
देवाः भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥

सम्पूर्ण मानव समाज कदम से कदम मिलाकर चले, सब मिलकर विचार-विमर्श करें, सब एक-साथ मिलकर बोलें।

हमारे प्राचीन लोग बताते हैं कि मानव बनने का, देवता बनने का यही मार्ग है। अथर्व वेद ३।३।६ में कहा गया है—

समानी प्रपा सह वो अन्नभागः
समाने योक्त्रे सहवो युनज्मि ।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥

तुम सबका खाना-पीना साथ साथ हो, तुम सब इस प्रकार रहो मानो भगवान् ने तुम्हें एक साथ जोड़ दिया है। जैसे रथ के पहिए में अरे एक नाभिस्थल में जुड़े रहते हैं, इसी प्रकार तुम्हारे समाज की भी रचना हो। यजुर्वेद ४०।६ मंत्र में कहा गया है—

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥

जो सब प्राणियों को अपने समान और अपने को सब प्राणियों के समान देखता है, उसका मन शान्त हो जाता है, उसे कोई संशय जीवन में डांवाडोल नहीं कर सकता। अथर्ववेद १९।५१।१ मंत्र में वर्णन किया गया है—

अयुतोऽहम् अयुतोऽम आत्मा अयुतं मे चक्षुः अयुतं श्रोत्रम् ।
अयुतो मे प्राणः अयुतो मे व्यानः अयुतोऽहम् सर्वः ॥

मैं एक नहीं सहस्रों हूं, लाखों, करोड़ों व्यक्तियों में मैं अपने को देखो

देखता हूँ, ये विश्व की लाखों, करोड़ों आँखें, कान, जीवन मानो मेरा ही जीवन है, मैं मानव समाज हूँ, मानव समाज में मैं हूँ। अथर्ववेद के १६।१५।६ मंत्र में बताया है—

'विश्वा आशा मम मित्रं भवन्तु' संसार में सभी दिशायें मेरी मित्र हों। दिशाओं के मित्र होने का भाव है सभी दिशाओं में स्थित मनुष्य मेरे मित्रवत् हों। पूर्व में, पश्चिम में उत्तर में, दक्षिण में सब मित्र ही मित्र हों।

वेद के इन उपदेशों का जब संसार में प्रचार था तब मनुष्य, मनुष्य था। उर्दू के एक कवि ने कहा है—

गुलशने हस्ती में यकरंगी का आलम आम था।
पहले सिर्फ इक कौम थी इन्सान जिसका नाम था॥

संसार रूपी बाग में जब तक एकरूपता की दशा थी तब तक संसार में एक ही जाति थी जिसका नाम मानव जाति था। मानव सभी प्राणियों से श्रेष्ठ है। महर्षि वेद व्यास ने महाभारत में कहा है—

गुह्यं ब्रह्म तदिदं वो ब्रवीभि न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्।

मैं तुझे परम रहस्य की बात बताता हूँ कि संसार में मनुष्य से बढ़कर और कुछ नहीं है। तुलसीदास ने लिखा है—

बड़े भाग मानुष तन पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथहि गावा॥

शतपथ ब्राह्मण में कहा है—

'पुरुषो वै प्रजापतेर्नेदिष्ठम्।'

अर्थात् मनुष्य प्रभु के सबसे निकट है। उर्दू का कवि कहता है—

घटे अगर तो फकत मुश्ते खाक है इन्सां,
बढ़े तो वुसअते कौनेन में समा न सके।

अर्थात् यदि अपने को मानवता से नीचे गिरादे तो वह केवल मिट्टी की एक मुट्ठी है और यदि ऊँचा उठा ले तो इहलोक और परलोक में भी समा नहीं सकता।

अथर्ववेद में १२।१।१ सूक्त में विश्व में मानव बनने और शान्ति

रखने के लिए छः सूत्र बताये गये हैं।

सत्यम्, ऋतम्, दीक्षा, तपः ब्रह्म, यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ॥

सचाई से काम लेना, ईश्वरीय अखण्ड नियमों का पालन करना, समाज सेवा का व्रत लेना, विलासिता में न पड़कर तपस्यामय जीवन बिताना, विश्व का नियंत्रण करनेवाली दिव्य शक्ति में विश्वास करना तथा दूसरों की भलाई में अपने स्वार्थ का उत्सर्ग। इसके विपरीत झूठ, बेईमानी, ईश्वरीय नियमों का उल्लंघन, जनसेवा न करना, विलासी जीवन, दैवीय शक्ति में अविश्वास और स्वार्थ मानवता से गिराते हैं।

आइए, मनुष्यत्व के साधनों पर विचार करें। यदि आप मानव बनना चाहते हैं तो सबसे पहले, काम, क्रोध, मद, लोभ और अहंकार पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न कीजिए। कामवासना जहाँ मनुष्य की सदिच्छाओं का हनन करती है, वहाँ वह मनुष्य के स्वास्थ्य और शक्ति को भी नष्ट करती है। काम पर विजय मानसिक पवित्रता और आत्मिक निर्मलता का बहुत बड़ा आधार है। काम पर विजय प्राप्त करने के लिए सबसे आधारभूत बात यह है कि कोई भी बुरा विचार मन में न आये।

क्रोध पर विजय मनुष्यत्व का दूसरा साधन है। जिस व्यक्ति का मस्तिष्क जितना शीतल होगा उसकी वाणी में उतना ही प्रेम और मीठापन होगा। अपने मस्तिष्क को जब हम शीतल रखेंगे तो हम जीवन में भी उतनी अधिक सफलता प्राप्त करेंगे।

लोभ पर विजय प्राप्त करना भी मनुष्यता के लिए आवश्यक है। **'सन्तोषादनुत्तम सुखलाभः'** सन्तोष से मनुष्य को बहुत लाभ होता है।

सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत्।
सन्तोषं हि सुखमूलं दुःखमूलं विपर्ययः ॥

सुख की इच्छा करनेवालों को सन्तोष का आश्रय लेना चाहिए। सन्तोष से सुख और असन्तोष से दुःख होता है।

सन्तोष के बाद मनुष्यत्व के लिए मोह पर विजय आवश्यक है। ईशोपनिषद् में कहा है **'मा गृधः'** लालच मत करो। **'कस्यस्विद्धनम्'** धन किसका है ? धन स्थिर नहीं रहता।

अहंकार पर विजय प्राप्त करना भी मनुष्यता का बहुत बड़ा साधन है। जब मनुष्य में अहंकार आ जाता है, अकड़ आ जाती है तो मनुष्य का पतन आरंभ है। मनुष्य अपने शारीरिक बल, विद्वत्ता धन और शक्ति पर अभिमान करता है और उस अभिमान में अनेक गड़बड़ कार्य करने लगता है। मनुष्य को न तो अपने को तुच्छ समझना चाहिए और न अपने को बहुत बड़ा।

इन पाँच महाविकारों के बाद मनुष्यता के लिए मनुष्य को यम-नियमों का पालन करना चाहिए। सहानुभूति अर्थात् दूसरे की भावना को अपने में अनुभव करना चाहिए। दूसरे के दुःख से दुःखी और सुख में प्रसन्न होना चाहिए। मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा का भाव मनुष्यत्व का विकास करता है। दूसरे के सुख में सुखी होना मैत्री, दुःख में दुःखी होना करुणा, दूसरे को अच्छा काम करते देख उसे उत्साहित करना मुदिता, पाप से घृणा करना पापी से नहीं यह उपेक्षा है। यह सभी बातें मनुष्यत्व में सहायक होती हैं। सत्य आदि यमों का पालन करना भी मनुष्यता के लिए अत्यन्त आवश्यक है। अहिंसा तो करुणा का ही रूप है। विनम्रता मनुष्य में मानवता को लाती है। विनम्रता के विषय में कहा गया है—

नमन्ति फलिनो वृक्षाः नमन्ति सज्जनाः जनाः।
शुष्कवृक्षाः दुष्टाश्च न नमन्ति कदाचन॥

फलों से लदे वृक्ष और गुणों से भरे मनुष्य नम्र होते हैं और सूखे वृक्ष तथा दुष्ट मनुष्य कभी नम्र नहीं हो सकते। महात्मा हंसराज जी आर्यसमाज के रत्न थे। उनके जीवन की एक घटना पढ़ी थी। मल्काना राजपूतों की शुद्धि के समय जब श्रद्धानन्दजी दिल्ली से आगरा आते थे तो महात्मा हंसराज उनका सम्मानपूर्वक प्रबन्ध करते थे।

एक बार उन्होंने स्वामी श्रद्धानन्द को पलंग पर बैठाया और स्वयं नीचे बैठ गये। इसी पर कालेज विभागवालों ने पूज्य हंसराजजी को उलाहना देते हुए कहा "आपने कालेज विभाग की हेठी करा दी।" इसपर उन्होंने उत्तर दिया "स्वामीजी मुझसे आयु तथा आश्रय में बड़े हैं और इस समय अतिथि भी हैं इसलिए भी वे सम्माननीय हैं।" यह है विनम्रता और अभिमान थूकता।

एक बार आर्य युवकसमाज, लोहगढ का वार्षिकोत्सव था। वहाँ यज्ञ के पुरोहित स्वामी मुनीश्वरानन्दजी भी उपस्थित थे। अपने यज्ञ के बाद के प्रवचन में वे बोले "आर्यसमाज के पंजाब के दोनों विभागों के नेता यहाँ पर हैं। मैं उनसे कहता हूँ कि दोनों खड़े हो जायें। यह सुनकर वहाँ सन्नाटा छा गया। उन्होंने दोनों के खड़े हो जाने पर कहा कि वे एक दूसरे की ओर बढ़ें और एक दूसरे के प्रति गले लगें। अभी वे एक दूसरे की ओर बढ़ ही रहे थे कि महात्मा हंसराजजी तेजी से बढ़े और स्वामी श्रद्धानन्द के पैर छूने को लपके। स्वामी श्रद्धानन्दजी ने जब यह देखा तो वे पीछे हटे और उन्हें अपने चरण स्पर्श नहीं करने दिये। उन्हें अपनी छाती से चिपटा लिया और दोनों की आँखों से आँसुओं की धारा प्रवाहित होने लगी। दर्शकों की आँखों से भी आँसुओं की धारा बहने लगी। महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज की जय के नारों से आकाश गूँज उठा।

श्रद्धा भावना और कृतज्ञता मानवता के लिए आवश्यक अंग हैं। वेद में **"श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि"**—ऋ० १०।१५।१।१ मंत्र में बताया है श्रद्धा को ही धर्म, ज्ञान और ऐश्वर्य का प्रमुख मार्ग कहा है **"श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः"** श्रद्धावान् व्यक्ति ही ज्ञान प्राप्त करता मनुजी ने लिखा है—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्त आयुर्विद्या यशोबलम्॥

बड़ों के प्रति सत्कार करने वाले और बड़ों के समीप रहने वालों की

आयु, विद्या, यश और बल बढ़ते हैं।

इस प्रकार श्रद्धा भी मानवता को बढ़ाती है। परोपकार को भी हम मानवता का नाम दे सकते हैं। भर्तृहरिजी महाराज ने एक स्थान पर लिखा है—

एके सत्पुरुषाः परार्थघटका स्वार्थं परित्यज्य ये,
सामान्यास्तु परार्थमुद्यंभृता स्वार्थाविरोधेन ये,
तेऽमीमानुष राक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये,
ये तु घ्नन्ति निर्थकं परहितं ते के न जानीमहे।

संसार में उन मनुष्यों को प्रथम श्रेणी का मानव कह सकते हैं जिन्होंने दूसरे के लिए अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया। श्रद्धानन्द, स्वामी दयानन्द और पण्डित लेखराम इसी श्रेणी के हैं। ऐसे लोग मनुष्य हैं—मनुष्य से भी बढ़कर हैं। दूसरे मनुष्य वे हैं जो अपना भी सँवारते हैं और दूसरों का भी भला करते हैं। तीसरी श्रेणी में वे लोग आते हैं जो अपने स्वार्थ के लिए दूसरों को हानि भी पहुँचा देते हैं। और चौथी श्रेणी में वे लोग आते हैं जो बिना किसी लाभ के लिए भी दूसरों की क्षति करते हैं।

मानवता के लिए प्रभु के दीनबन्धु रूप को ध्यान में रखकर दीनों का बन्धु बनकर उनकी सहायता और सेवा भी आवश्यक है। एक दिन सड़क पर पड़ी हुई, रोती बुढ़िया को देखकर एक रिक्शेवाले ने उससे हाल पूछा। रोने का कारण पूछा। जब उसे पता लगा कि बुढ़िया का पुत्र बीमार है तो वह उसे रिक्शे पर बैठाकर डाक्टर के पास ले गया। उसे दिखाया। उसकी फीस दी और फिर वापस घर पहुँचा दिया। जब तक वह बुढ़िया का एकमात्र पुत्र ठीक न हो गया वह उसकी निष्काम सेवा करता रहा। क्या यह मानवता नहीं? दूसरी ओर एक गरीब के एक मात्र पुत्र के बीमार होने पर उसे बचाने के लिए डाक्टर को उसकी वत्तीस रुपए फीस देने के लिए अपने सब आभूषण बेचकर जब डाक्टर को लिए लौटकर आते हैं तो बच्चा मर

का होता है। उस मरे हुए बच्चे के लिए भी कठोरता से फीस लेनें-
ला कोठी, सोफासेट, रेडियो, वोडियो आदि साधनों से सम्पन्न,
भुत्व सम्पन्न डाक्टर क्या मनुष्य है ? दोनों में किस में मानवता
? उर्दू का एक कवि लिखता है—

खुदा के बन्दे तो हैं हजारों वनों में फिरते हैं मारे मारे।
मैं उसका बन्दा बनूंगा जिसको खुदा के बन्दों से प्यार होगा ॥

सच्ची मैत्री की भावना रखना भी मानवता की निशानी है। संकीर्णता, संकुचितता और पक्षपात मानवता के बहुत बड़े शत्रु हैं।

मानवता के लिए आलोचना, उपहास और अपमान की प्रवृत्ति भी ठीक नहीं।

संक्षेप में हम यही कहेंगे कि मनुष्य का मनुष्यत्व उसके मानसिक एवं आध्यात्मिक भावों के उन्नत होने पर ही होता है। मानवता के लिए मधुर और तर्कसंगत वाणी भी आवश्यक है। गीता में वाणी के तप का उल्लेख करते हुए कहा है—

अनुद्वेग करं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यत ॥

उद्वेग को उत्पन्न न करने वाला वाक्य, प्रिय और हित कारक सत्य-भाषण, स्वाध्याय और ईश्वर के नाम का जाप यह वाणी का तप है। मानव के लिए यह तप आवश्यक है। वाणी के दोषों का भी उल्लेख किया गया है। कहा है—

पारुष्यमनृतं चैव पैशून्यं चापि सर्वशः।
असंबद्ध प्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम्।

अर्थात् कटुवचन, झूठ, चुगली और असंबद्ध प्रलाप मानवता के विरोधी दुर्गुण हैं। यह बात ध्यान रखनी चाहिए—

रसना के जीते बिना, कोई न जितेन्द्रिय होय।
रसनेन्द्रियजित जो पुरुष, सर्वेन्द्रियजित होय ॥

अन्यत्र कहा है—

रोष न रसना खोलिए, वरु खोलिय तरवार।
सुनत मधुर परिनाम हित, बोलिय वचन विचार॥

इसलिए हमें मनुष्य बनने की साधना करनी चाहिए। अ
निरीक्षण और जागरूकता मानवता के लिए आवश्यक हैं। वेद
आदेश है **"मनुर्भव"** आइए हम भी निश्चय करें कि मनुष्य बन
रहेंगे।

□□